एक चिथड़ा सुख

एक चिथड़ा सुख

निर्मल वर्मा

There is always a part of man that refuses love. It is the part that wants to die. It is the part which needs to be forgiven.

अल्बेर काम्यू

एक
चिथड़ा

९

सुबह के वक्त कोई नहीं आता था। यह उसे अच्छा लगता था। वह अपने कपड़े उतार देता—सिर्फ अण्डरवियर पहनकर छत पर चला आता। लेट जाता। लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगता। हवा उसके फेफड़ों में घूमने लगती। रात की बची-खुची नींद उन साँसों में बह जाती।

"तुम फिर नंगे बैठे हो!" भीतर से आवाज़ सुनायी देती।

'मैं वर्जिश कर रहा हूँ।"

"आड़ू।"

पता नहीं चलता, वह सोते हुए कह रही है या सचमुच जाग गयी है। मज़ाक में वह उसे 'आड़ू' कहती थी—जब उसकी बेवकूफियों से तंग आ जाती थी। छत पर नंगे लेटना सचमुच आड़ूपन था। पर उसे यह अच्छा लगता था। वह लेटा रहता और भीतर सन्नाटा छाया रहता।

वह रात को देर से लौटती थी। कभी अकेले, कभी दोस्तों के साथ। लेकिन ये ज्यादा देर नहीं ठहरते थे। अपना थियेटर का सामान कोने में रख देते, खड़े-खड़े कॉफी पीते—फिर अँधेरे में गायब हो जाते। वह सो रहा होता था। बीच में जाग जाता, फिर सो जाता।

कभी-कभी डैरी भी आते थे, डायरेक्टर, लेकिन सब उन्हें डैरी कहते थे, वह उसके माथे पर हाथ रखते और तकिये के पास बैठ जाते। उनकी लम्बी दाढ़ी उसे सपने में भी दिखायी देती थी। वह उससे बोलते थे और वह ऊँघता हुआ हूँ-हाँ करता रहता। वह सबसे बाद में जाते थे—बिट्टी उन्हें नीचे जीने तक पहुँचाने जाती थी। फिर दरवाज़े की साँकल चढ़ाई जाती, फिर डैरी अपना स्कूटर स्टार्ट करते। बहुत दूर तक वह उसकी इंजन की गड़गड़ाहट सुनता रहता।

सबसे छुट्टी पाकर बिट्टी कमरे में आती। कमरे में आते ही उसे चूमती थी, उसके मुँह को—और फिर उसके बालों को—और तब उसे गुदगुदी-सी होने

गती और वह हँसने लगता। विट्टी कपड़े उतारकर उसके पास ही लेट ज
वरसाती का दरवाजा खुला रहता—हवा में हिलता रहता।
वे मार्च के दिन थे और हवा दिन-रात चलती थी।

"पता है, कितना टाइम हुआ है ?"
वह दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया।
"सब पता है, मुझे सोने दो।"
"बाद में मुझसे मत कहना कि जगाया नहीं।"
वह जरा-सी हिली। नींद की यात्रा में वह घिसटते हुए अपने बिस्तर से
उसके बिस्तर तक चली आती थी। जब वह यहाँ आया था, तो उसे काफी
धक्का-सा लगा था कि विट्टी फ़र्श पर सोती है। इलाहाबाद के घर में सबके अलग
अलग पलंग थे। सिर्फ नौकर फर्श पर सोता था।
अब वह खुद फर्श पर सोने लगा था। अब उसे कोई परेशानी नहीं होती
थी।
अभी नहीं उठेगी, उसने सोचा। वह उसके उठने के आसार जानता था।
उठते ही आधी नींद में वह रिकार्ड लगाती थी—कोई-सा भी रिकार्ड जो बहुत
धीमा हो—फिर तकिये के नीचे से सिगरेट का पैकेट निकालती थी। वह भाग-
कर रसोई से माचिस लाता था। हर रोज धड़कते दिल से पूछता था—"विट्टी,
मैं जलाऊँ ?" और वह उसका हाथ पकड़ लेती थी और तब तक पकड़े रहती
थी जब तक तीली की लौ उसकी उँगलियों तक नहीं सरक आती थी। वह उसे
वहीं छोड़ किचन में भाग जाता था।
वह एक छोटे क़द का लड़का था, दुबला-पतला, विट्टी का कजिन। विट्टी
के दोस्त उसे इसी नाम से बुलाते थे। जब स्टूडियो में रिहर्सल खत्म हो जाता
और शाम खाली होती तो उनमें से कोई जरूर कहता था, "लेट अस गो टु
कजिन्स।" और वे विट्टी को वरसाती में चले आते, बियर पीते, काफी शो
मचाते और तब तक जमे रहते जब तक विट्टी उन्हें बाहर नहीं निकाल दे
थी।

वह किचन में चला आया।···स्टूल पर खड़ा होकर बाहर देखने लगा।

क्षण कुछ भी दिखायी नहीं दिया। मार्च की हल्की धुन्ध पर सिर्फ एक गुम्बद दिखायी देता था—पेडो के ऊपर अटका हुआ। वह उन खँडहरों का हिस्सा था, जो मकानों की पीठ से पीठ लगाये दूर तक चले गये थे। पहले दिन जब यहाँ आया था तो उसे बहुत हैरानी हुई थी। दिल्ली भी कैसा शहर है। मुर्दों के टीलों तले लोग जिन्दा रहते हैं।

पानी उबलने लगा। उसने जल्दी से केतली नीचे उतार दी, पत्ती डाली और स्टूल से नीचे उतर आया।

पीछे मुडा, तो बिट्टी बैठी थी, चीज-क्यूब को कुतर रही थी, गिलहरी की तरह। आँखे भी उसी तरह घूम रही थी।

"सुनो···" उसने कहा, "मैं आज ही तुम्हे इलाहाबाद भेज दूँगी।···"

"क्यों?"

"ऐसे ही। मैं अकेले रहना चाहती हूँ। तुमसे तंग भी आ गयी हूँ।"

वह उसके पास आया, उसके हाथ मे चाय का कप दिया—और अपना कप लेकर वही बैठ गया, फर्श पर, बिट्टी के पैरो के पास।

'क्या मैंने तुम्हें जगा दिया? कल से मैं वर्जिश गुसलखाने मे करूँगा।"

बिट्टी उसके बालों से खेल रही थी। ध्यान कही और था, उँगलियाँ कही और। निगाहे कही न थी। वह उसकी छुअन से जान गया कि वह उसे नही सुन रही। वह अधिकांश समय नही सुनती थी। कई बार ऐसा होता था कि दोनो चुपचाप किचन मे बैठे रहते थे। गरमाई में सिकुड़े हुए। बिट्टी की बरसाती मे रसोई ही एक ऐसी जगह थी, जो इलाहाबाद की याद दिलाती थी।

"आज क्या करोगे?" बिट्टी ने पूछा।

"तुमने कहा था, मुझे रिहर्सल में ले चलोगी।"

"आज बहुत लम्बा चलेगा···ऊब नहीं जाओगे?"

"मैं बाहर घूमता रहूँगा।" उसने कहा।

वह घर मे अकेला नही रहना चाहता था। दिन-भर बिट्टी के साथ चिपटता रहता था, स्टूडियो मे, कैन्टीन मे · जहाँ-जहाँ बिट्टी जाती थी, वहाँ-वहाँ वह भटकता रहता। कभी मन उखड जाता तो घर लौट आता। बिट्टी उसे चाभी दे देती। किन्तु सीधा घर जाने के बजाय वह मकबरे के बाग में बैठ जाता। उन लड़कों को देखता रहता, जो घास पर बैठे परीक्षाओं की तैयारी में जुटे रहते। अँधेरा होते ही चिमगादड उडने लगते—और वह जल्दी-जल्दी घर लौट आता। ताला बन्द रहता। कभी-कभी उसके बीच कागज का पुरजा फँसा होता

—"मैं आयी थी—तुम नहीं थे। खाना बना दिया है—अगर देर से लौटो तो खाकर सो जाना, बस। वह आखीर में 'बस' लिखना नहीं भूलती थी।

वह बिना दरवाजा खोले टैरेस पर लेट जाता। उसे कोई परीक्षा नहीं देनी थी। जब इलाहाबाद में था, तो बाहर भी नहीं निकलता था। छाती के भीतर घुमड़न-सी होती थी—रात के वक्त साँस चढ़ जाती और वह औंधा होकर बैठा रहता। बाबू मालिश करते तो धीरज मिलता। साँसें पटरी पर लग जातीं। फिर बिट्टी की चिट्ठी आयी थी—"इसे दिल्ली भेज दो। जब स्कूल नहीं जाता, तो जैसे वहाँ, वैसे यहाँ—कोई अन्तर नहीं।"

नहीं, अन्तर बहुत था। यहाँ बिट्टी मालिश नहीं करती थी। न रात को साँस चढ़ती थी। घर बहुत दूर था और बिट्टी, जो इतनी पास थी, उसे अकेला छोड़ देती थी। उसे यह अच्छा लगता था कि कोई उसके आसपास नहीं मँडरा रहा—हालाँकि वे एक ही बरसाती में रहते थे; फिर भी उसे पता नहीं चलता था कि वह क्या कर रही है, क्या सोच रही है। उन्होंने कमरे को दो देशों में बाँट लिया था—बीच में मूढ़ों का फरन्टियर था—एक तरफ बिट्टी का बिस्तर, दूसरी तरफ उसका। वे एक-दूसरे को देख भी नहीं सकते थे।

वे सिर्फ सुन सकते थे। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि वह बिट्टी को सुनता था। वह अपनी सरहद में घूमती जाती और बोलती जाती—ऐसे शब्द, जो उसने पहले कभी नहीं सुने थे। कभी-कभी उसे भ्रम होता कि वह किताब पढ़ रही है—किन्तु जब वह मूढ़ों के बीच झाँककर देखता तो वह बिस्तर पर लेटी दिखायी देती, छत की तरफ ताक रही होती, जैसे कोई आदमी ऊपर बैठा है और वह उससे बात कर रही है—बोल रही है, एक-एक शब्द को हवा से निकालकर खींच रही है—वह अपना सिर अपनी सरहद में खींच लेता। लेट जाता।

"कैसा लगता है ?" बिट्टी हमेशा पूछती थी।

"तुम चीखती बहुत हो।"

"मेरी आवाज़ आखिरी सीट तक जानी चाहिए।"

"बिट्टी—तुम जब स्टेज पर जाती हो, तो घबराती नहीं—इतने लोगों के सामने ?"

"मैं उन्हें देखती नहीं।"

"किसी को भी नहीं देखतीं ?" उसने कुछ हैरानी से पूछा।

बिट्टी सोचने लगती—और सोचने का मतलब होता—सचमुच सोचना, जैसे वह अपने भीतर के अँधेरे में बाहर का उजाला ढूँढ़ रही हो। एक छाया लेटने पर

बैठ जाती। उसने कभी किसी को ऐसे सोचते नहीं देखा था। न माँ को, न बाबू को! वह सहम-सा जाता और अपना मुँह मोड लेता।

एक बार वह सचमुच आतंकित हो गया था। उस दिन उसे हल्का-सा बुखार चढ़ आया था। दो कम्बलों में लिपटकर वह ऊँघ रहा था। यों भी बुखार में उसे सोने और जागने के बीच कुछ भी पता नहीं चलता था। तब सहसा कम्बल के अँधेरे में उसे एक कौंध दिखायी दी थी—एक आवाज, न तेज, न धीमी—किन्तु एक जिद्दी-सी लय में जकडी हुई जैसे कोई धीरे-धीरे आरे से लकडी रेंद रहा हो। कुछ देर सन्नाटा घिरा रहा। फिर उसने दुबारा वही आवाज सुनी—इस बार बिल्कुल पास से। एक गोल और गीली आवाज, पहिये की तरह घूमती हुई। वह रेंगता हुआ दूसरी सरहद तक सरक आया—मूढ़ों के बीच देखा—और देखता रहा।

बिट्टी अपने घुटनों पर बैठी थी। सामने एक डेस्क था—जिस पर उसके हाथ थे, मुट्ठियों में भिंचे हुए। माथा डेस्क पर टिका था, वह उसका चेहरा नहीं देख सकता था।

"बिट्टी,..." उसने कहा।

कुछ देर तक उसका सिर डेस्क पर टिका रहा—गर्दन पर भूरे बाल हवा में उड़ते रहे—फिर उसने अपना सिर उठाया। उसकी आँखें—आँखों के नीचे कपोल—चमक रहे थे। एक भीगी रोशनी में, जो सिर्फ पानी था—किन्तु चेहरे पर ढुरककर जो रोशनी-सा दिखायी देता था।

"तुम रो रही हो।" उसने कुछ ऐसे कहा, जैसे स्वयं बिट्टी को उसके रोने की सूचना दे रहा हो।

बिट्टी ने सिर हिलाया।

"सचमुच नहीं।" बिट्टी ने कहा, "मेरे पार्ट में रोना बदा है।"

उसका ऊपरी होंठ जरा-सा सिकुड़ गया, जैसे वह आधा मजाक हो, आधा सच...

"फिर क्या तुम्हारे आँसू असली नहीं थे?"

"तुम्हें वे बनावटी लग रहे थे?"

"बनावटी की बात नहीं...लेकिन अगर तुम पार्ट में रो रही थी, तो वे असली कैसे हो सकते हैं?"

"यह मुश्किल नहीं है; मैं कोई बात सोचने लगती हूँ और वे अपने-आप चले आते हैं।"

"कौन-सी बात ?"

"कोई भी।" उसने कहा।

"क्या घर के बारे में ?"

वह उसकी ओर देखने लगती, जैसे वह किसी दूसरे ग्रह का प्राणी हो

"कहाँ जा रही हो ?"

वह अपना बिस्तर समेट रही थी।

"मैं किचन में सोऊँगी।"

जाने दो, वह सोचता, अगर इतनी-सी बात पर वह भन्नाकर जा सकती है, तो जाने दो। वह मिन्नत नहीं करेगा। लेकिन जब बिट्टी सचमुच अपना बिस्तर एक हाथ में और किताबों का थैला दूसरे हाथ में लेकर जाने लगती, तो उसका दिल डूबने लगता। उसे एक और दुपहर याद आने लगती; सर्दियों की धूप और इलाहाबाद का स्टेशन, जब वे उसे छोड़ने आये थे। वे सब वहाँ मौजूद थे, उसके पिता और बिट्टी के माँ-बाप, जिन्हें वह चाचा-चाची कहकर बुलाता था। वे सब प्लेटफार्म पर खड़े थे। तब दिल्ली सिर्फ एक दूर का शहर था, एक नाम, जहाँ बिट्टी जा रही थी। वह अलग-थलग खड़ी थी। सलेटी रंग का कुर्ता और नीली जीन्स पहने, एक ब्राउन खुला स्वेटर जो घुटनों तक आता था "भिखारियों से कपड़े पहनती है" पीठ पीछे चाची कहती थीं। भिखारियों की तरह ? नहीं, उसे इसकी कोई खबर नहीं थी। वह सबसे बेखबर खड़ी थी, एक हाथ में स्लीपिंग-बैग का बण्डल, दूसरे में सूटकेस। वह कभी कुली नहीं लेती थी, चाहे प्लेटफार्म पर कितनी दूर ही न घिसटना पड़े।

आज उसे लगता है, यह कभी बहुत पहले हुआ था, किसी पिछले जन्म में—इलाहाबाद की दुपहर, स्टेशन, बिट्टी का सूटकेस—

और चाची—वह बिट्टी की आँख बचाकर रो रही थीं।

वह बाहर लेटा था। बिट्टी गुसलखाने में थी। पानी आ रहा था। वह कपड़े धोने का दिन था।

जब बुखार नहीं आता, तो वह खुली छत पर चला आता था। असली छत भी नहीं—सिर्फ हथेली-भर का टैरेस, जो बरसाती के मुँह से एक लम्बे दाँत की तरह निकला रहता था। वहाँ तीन-चार बेंत की कुर्सियाँ पड़ी रहतीं—जिन पर सेमल के फूल झरा करते थे। पेड़ की डालें मकबरे पर झूला करतीं—लाल

सुर्ख—जैसे कोई आग की लपट हवा में लहरा रही हो।

उसकी आँखें खुल गयी—इतना सन्नाटा। गुसलखाने में कोई आवाज नहीं थी—न कपड़े धोने की, न पानी बहने की। वह रसोई में आया, तो देखा, गैस पर कॉफी का पर्कोलेटर रखा था। उसने बन्द गुसलखाने का दरवाजा खटखटाया—

"बिट्टी ?"

"क्या ?"

"पानी उबल रहा है।"

वह टब के आगे बैठी थी। हाथ साबुन में सने थे—लेकिन बाँहें नंगी थी। —पानी में सफेद मछलियों-सी पसरी हुई। नल रह-रहकर खाँसने लगता था, लेकिन पानी की एक बूंद बाहर नहीं आती थी।

उसने सिर उठाया—माथे पर पसीने की बूंदें चमचमा रही थी।

"बुखार देखा ?" उसने अपना भीगा हाथ उसके माथे पर रख दिया।

"आज बिल्कुल नहीं है।" उसने कहा।

वह उसकी ओर देखती रही।

"ज़रा साबुन डालो" " उसने कहा।

उसने सर्फ का डिब्बा उठाया और टब के पानी में उलटा कर दिया। पाउडर झरने लगा, कुछ कपड़ों पर, कुछ उसके हाथों पर और वह कपड़ों को रगड़ने लगी, उसकी बनियानें और जाँघिये, बिट्टी के ब्रा और रूमाल और अण्डरवियर। वह टब के सामने ऐसे बैठती थी, जैसे वह लड़ाई का मैदान हो—कपड़े दुश्मन हों, उनका मैल काला खून, जिसे वह आखिरी बूंद तक निचोड़ लेती थी।

"बस !" उसने कहा। फिर उसकी ओर देखा, "मेरे हाथ गन्दे हैं—तुम कॉफी बनाओगे ?"

वह हिचकते हुए कहती थी—इसलिए नहीं कि वह छोटा था, या बुखार में था—बल्कि एक अलग कारण से···और वह कारण हमेशा अँधेरे में छिपा रहता था।

उसने पर्कोलेटर उतारा गैस बुझा दी और दो प्यालों में पानी डालता हुआ खिड़की के बाहर देखने लगा—गुम्बद के ऊपर दो चीलें उड़ रही थी, दुपहर के सन्नाटे को गहराते हुए—एक चुप उड़ान—जो उसके भीतर एक कुआँ-सा खोदने लगती थी।

भीतर आया, तो नल गड़गड़ाता हुआ बह रहा था। उसने चौकी पर प्याले रख दिये। "ठण्डी हो रही है।" उसने कहा।

"बस—एक मिनिट।"

उसने कुहनी से अपने बालों को पीछे किया—तो तिकोना सफेद चेहरा बाहर निकल आया—गालों पर दो सुर्ख गोलियाँ चमक रही थीं। वह पटरे पर उकड़ूँ बैठी थी, जिसके कारण जीन्स के पाँयचे ऊपर खिच आये थे, और घुटनों की सीवन एकदम कस गयी थी। उसने अपना कप घुटने पर ही रख लिया। वह हमेशा ऐसे ही कॉफ़ी पीती थी—जब कपड़े धो रही होती।

वह सबसे सुखद घड़ी होती थी।

गुसलखाने के आधे-अँधेरे में वे आमने-सामने बैठ जाते थे, धीरे-धीरे कॉफी पीते थे। धुले हुए कपड़ों से एक तीखी, नशीली-सी गन्ध ऊपर उठती थी और कॉफ़ी में साबुन का स्वाद आता था।

"आज नहीं पढ़ोगे ?" बिट्टी ने उसकी ओर देखा।

"तुम्हें देर तो नहीं हो जायेगी ?"

"आज रिहर्सल शाम को है," उसने कहा, "निकालो अपने हन्टर साहब को !" मिस्टर हन्टर, यह असली नाम नहीं था, वे हँसी में कहते थे। एक आयरिश मिशनरी, जिन्होंने अपने संस्मरण कुमाऊँ जंगलों के बारे में लिखे थे। स्वयं बिट्टी का बचपन घूमते हुए बीता था। चाचा रेलवे में थे, हमेशा एक शहर से दूसरे शहर तबादला होता रहता था। बाद में जब वह स्कूल जाने लगी, तो उसे नैनीताल के एक होस्टल में रहना पड़ा। उन दिनों हिन्दुस्तानी अफसर अपने बच्चों को किसी कान्वेंट में जमा करके छुट्टी पा लेते थे। बिट्टी की यह किताब उसी ज़माने की थी—द मैमोयर्स ऑफ ए मिशनरी—ऐसे मिशनरी, जिनका ज्यादा समय परमेश्वर की खोज में उतना नहीं, जितना पशुओं की तलाश में गुज़रता था।

वे भी उनके साथ भटकते थे। जब कपड़े धोने का दिन आता, वह गुसलखाने में किताब लेकर चला आता, वह कपड़े धोती रहती और वह पढ़ने लगता।

Last night the panther came...

बिट्टी का सिर कुछ टेढ़ा-सा हो जाता और गर्दन की नसें चमकने लगतीं, जैसे वह भी अल्मोड़ा और रानीखेत के जंगलों में चली गयी हो; हन्टर साहब के पीछे-पीछे; चारों तरफ सिर्फ पेड़ दिखायी देते, पेड़, घास और झाड़ियाँ और पैरों के नीचे पत्ते चरमराने लगते और उसके नीचे सब कुछ दब जाता, नल का बहता पानी, साबुन और मैल की गन्ध, पिटते कपड़ों की कराहट—सिर्फ हवा सुनायी देती, हवा और घास और अँधेरे के बीच चार पैर और दो चमकती

आँखें···Last night the panther came and my dog whined for a long time.

"ह्वाईन का मतलब ?" उसने आँखें ऊपर उठायी।

"रिरियाना," बिट्टी ने कहा।

"रिरियाना ?"

"रोना·· सुबक-सुबककर रोना।" बिट्टी के हाथ टब मे निश्चल पड़े थे। वह हवा में ताक रही थी।

"सुना तुमने ?"

"क्या ?" वह बिट्टी को देखने लगा।

"कोई दरवाजा खटखटा रहा है।"

"कोई नही--हवा है।"

वह अब भी जंगल मे घूम रहा था।

दुबारा खटखटाहट हुई, तो कोई भ्रम नही रहा। उसने किताब बन्द कर दी और उसके साथ पैन्थर की चमकती आँखें भी मुंद गयी।

वह बाहर चला आया। जीने का दरवाजा खोला।

"आप ?"

जीने की सबसे ऊपरी सीढी पर डैरी खड़े थे।

"कहाँ थे तुम लोग ?" उन्होंने कहा, "मैं दस मिनट से दरवाजा पीट रहा हूँ।"

"हम बाथरूम में थे।" उसने कहा, "बिट्टी कपड़े धो रही है।"

वह अपनी दाढी को खुजलाने लगे। उन्होंने एक नीली कमीज पहन रखी थी, आस्तीनें ऊपर चढा रखी थी, जिनके नीचे बाँहो के बाल बाहर झाँका करते थे। कन्धे पर एक थैला लटका था, गर्म और भूरा, जो एक तिब्बती झोला-सा दिखायी देता था।

वह भागता हुआ भीतर आया।

"डैरी आये हैं।" उसने भीतर झाँककर कहा।

"कौन ?" बिट्टी ने टब से सिर ऊपर उठाया।

उसे जवाब नही देना पडा, क्योंकि इस बीच डैरी कमरे में आ गये—वह बाथरूम की देहरी पर खडे थे, जेब से रूमाल निकाला था, वह अपनी ऐनक के शीशे साफ कर रहे थे।

बिट्टी ने सिर उठाया। होंठ खुल गये थे—हँसी में या विस्मय मे—वह जान नही सका।

"कहाँ से आ रहे हो ?"

"इरा से—उसने फोन किया था।"

"होस्टल में ?"

"और कहाँ ?"

उन्होंने ऐनक दुबारा पहन ली—वह बहुत थके दिखायी देते थे। दाढ़ी पर की हल्की-सी परत चिपकी थी। बगलों में पसीने के दायरे आधे-चाँद से उभर आये थे।

"कॉफ़ी पियोगे—अभी बनायी है ?"

बिट्टी नल के पानी में हाथ धोने लगी।

डैरी ने उसके कन्धे को छुआ—

"कैसी तबीयत है ?"

"ठीक।" उसने सिर हिलाया और कपड़े समेटने लगा। एक-एक करके बाल्टी में डालने लगा।

अब वे उसकी पीठ के पीछे थे और वह उन्हें नहीं देख सकता था। बिट्टी ने गैस पर पानी रखा था और वह स्टूल पर बैठ गये थे। रसोई की खिड़की खुली थी—बाहर सन्नाटा था। दुपहर की डूबती घड़ी का मौन, जो हर मकान की चौखट पर सुस्ताने बैठ जाता था। मन में आया, कमरे में जाकर लेट जाये—फिर बैठा रहा। गुसलखाने के शान्त, शीतल अँधेरे में।

"कुछ खाने को है ?" डैरी का स्वर सुनायी दिया।

"तुमने अभी तक कुछ नहीं खाया ?"

"मैं सुबह ही घर से निकल आया था।"

उन्होंने कुछ और कहा—लेकिन वह नहीं सुन सका। गैस पर कॉफ़ी का पानी सिरसिरा रहा था।

वह कपड़ों की बाल्टी लेकर छत पर आया, तो बिट्टी की छाया दिखा दी।

"तुम बैठो—मैं और डैरी सब टाँग लेंगे।" उसने कहा।

'तुम जाओगी नहीं ?'

"अभी नहीं।" उसने बाल्टी उसके हाथ से लेकर कोने में रख दी... अण्डे की भुजिया बना रही हूँ···डैरी को भूख लगी है।"

मन में आया, कहे, वह हमेशा भूखे रहते हैं। उनकी भूख और फ़... को देखकर कभी-कभी बहुत दया आती थी। कोई अनुमान भी नहीं लगा...

था कि वह असल में कौन हैं, कहाँ रहते हैं। जब उसने बिट्टी से पूछा था, तो वह काफी देर तक हँसती रही थी। उसने सोचा था, वह कोई बेरोजगार किस्म के आदमी हैं, जो थियेटर करते हैं। "तुम्हें नहीं मालूम, अकबर रोड पर इनके पिता का बँगला है—बहुत बड़ा लॉन है, जहाँ कभी-कभी हम रिहर्सल करते हैं।" तब भी उसे कुछ समझ में नहीं आया था। उन दिनों उसके लिए जैसा अकबर रोड—वैसा बाबर रोड—कोई खास अन्तर नहीं दिखायी देता था।

अन्तर आया था—तो सिर्फ देखने में—अब वह कभी आते थे, तो वह उन्हें बहुत ध्यान से देखता था—अचानक क्षणों में जब वह बिट्टी से बात-चीत करते थे। वह अचानक बड़े-से दिखायी देने लगते थे, जब वह बोलते थे—लेकिन चुप्पी के क्षणों में महसा छोटे हो जाते थे—जैसे यह कोई जादू का खेल हो! खेल नहीं, यह सच था। उनकी उम्र हमेशा घटती-बढ़ती रहती थी—लेकिन वे खुद एक जगह ठहरे-से दिखायी देते थे। वह ठहरी हुई जगह कहीं ऊपर थी—उसे हमेशा सिर उठाकर डैरी को देखना होता था—और तब उसे अक्सर भ्रम होता था, जहाँ डैरी है, वहाँ से दुनिया बिल्कुल विचित्र दिखायी देती होगी···

क्या बिट्टी ने उस दुनिया को देखा था?

वह अपने बिस्तर पर आकर बैठ गया। वहाँ से सब दिखायी देता था—डैरी चुपचाप खा रहे थे। टोस्ट और अण्डे की भुजिया। दूसरे हाथ में वह हन्टर की किताब के पन्ने पलट रहे थे।

बाहर सेमल का पेड़ साँय-साँय सरसरा रहा था।

"मेरी एक छोटी बहिन है···" डैरी ने उसे देखा, "मैंने उसे तुम्हारे बारे में बताया है?"

"मुझे मालूम है।" उसने कहा।

"कैसे?"

"बिट्टी ने कहा था।"

डैरी अपनी दाढ़ी पर चिपके टोस्ट के टुकड़े हटाने लगे।

"तुम उससे मिलना चाहोगे?"

वह चुप रहा। उसकी कोई इच्छा नहीं थी—लेकिन वह यह बात डैरी से नहीं कहना चाहता था।

"कुछ दिनों में हम रिहर्सल बाहर किया करेंगे···"बिट्टी ने कहा, 'तब यह भी आ सकता है।"

"तुमने निक्की भाई से बात की थी?" डैरी ने पूछा।

नाराज हैं।" विट्टी ने कहा, "वह सौ-गल का सेट बनाना चाहते थे···
व नक्शे बना लिये थे।"
ने ऐक्टर कहाँ से आयेंगे?' डैरी अपने टोस्ट से तश्तरी साफ कर रहे

वह कुछ और भी कह रहे थे।" विट्टी उसके पास बिस्तर पर बैठ गयी

'क्या?" डैरी ने उसकी तरफ देखा।
"कहते थे—तुम डिक्टेटर की तरह काम करते हो—जब तुमने स्ट्रिनवर्ग
, तो किसी से पूछा भी नहीं।"
"इरा को मालूम था, उसने उन्हें नहीं बताया?"
"इसीलिए वह नाराज़ थे। कहते थे, हर बात उन्हें तीसरे आदमी से पता
लती है।"
डैरी बेसिनी के आगे खड़े हो गये—नल खोला—लेकिन हाथ धोने के
जाय आईने में देखने लगे, जहाँ विट्टी बिस्तर पर बैठी थी।
"मैं उनके दफ़्तर जाता हूँ—वहाँ पता चलता है, वह किसी साइट पर गये
हैं···घर में होते नहीं—इरा के होस्टल जाता हूँ, तो पता चलता है, वे दोनों
कहीं बाहर गये हैं···फिर कहते हैं—मैं उनसे मिलता नहीं।"
उनकी आवाज़ नल की धार में खो-सी गयी। वह मुँह धो रहे थे।
'तुमने रिकार्ड छाँट लिये हैं?" उन्होंने पीछे मुड़कर देखा।
'कौन-से रिकार्ड?"
"मैंने तुमसे कल कहा था।"
वह तौलिये से मुँह पोंछते हुए कमरे में चले आये। कोने में रिकार्ड-प्लेयर
रखा था—वह वहीं फर्श पर बैठ गये।
"तुम कपड़े सुखा लो—मैं छाँट लेता हूँ।"
विट्टी अपनी जगह पर बैठी रही। कमरे में हल्का-सा अँधेरा घिर आया था
—क्षण-भंगुर—बाहर कोई बादल सूरज को ढक गया था। मार्च की दुपहर
ढलने लगी थी।
"इरा ने क्यों बुलाया था?" विट्टी का स्वर बहुत धीमा-सा हो आया।
"पागल है!" डैरी चुपचाप रिकार्डों को पलट-पलटकर देख रहे थे।
"कहती थी—इस प्ले के बाद वह लन्दन लौट जाना चाहती है।"
"इसमें पागलपन क्या है?"

डैरी के हाथ रुक गये—बिट्टी को देखा।

"तुम्हें सब ठीक लगता है ?"

"सब तुम्हारे जैसे नहीं हैं।" बिट्टी का स्वर कुछ ऊपर खिंच आया।

"क्या मतलब ?"

"अगर मैं इलाहाबाद लौट जाती हूं—तो तुम मुझे भी पागल समझोगे···"

डैरी कुछ नहीं बोले, सिर्फ हँस दिये।

"तुम सबको शक की निगाह से देखते हो।" बिट्टी ने कहा।

"शक की निगाह से ?"

"जब से तुम लौटे हो, तुम्हें···"

"बिट्टी !" डैरी ने उसे बीच में ही रोक दिया। फिर दोनों ने सहसा एक साथ उसकी ओर देखा।

वह बिस्तर पर लेटा छत को ताक रहा था।

वे लड़ रहे थे। वे ऐसे ही बात-बात पर लड़ने लगते थे। उसे हमेशा बिट्टी पर आश्चर्य-सा होता था। पता नहीं, कौन-सा गुस्सा उसके भीतर दबा रहता था, जो ज़रा-सा छूते ही मवाद की तरह बहने लगता था···

बिट्टी गुसलखाने में चली गयी लेकिन डैरी वहीं बैठे रहे—चारों तरफ बिखरे रिकार्डों के बीच। क्या वह उनसे कुछ कह सकता है ? वह कहाँ गये थे ? कहाँ जाकर वापिस लौट आये थे ?

अचानक हवा का एक झोंका आया और दरवाज़ा खुल गया। बाहर की रोशनी भीतर आ रही थी, भूरा-सा आलोक, जो मार्च के दिनों में चमकीली चाँदी-सा झरता था। बिट्टी तार पर कपड़े टाँग रही थी। वह साफ और खुली शाम थी। बिट्टी के बाल भी खुले थे। हवा में फड़फड़ाता हुआ कोई गीला कपड़ा उसके चेहरे पर लिपट जाता, उसकी देह को ढक लेता था। वह हल्के-से सिर को झटका देती और चेहरा बाहर निकल आता—खुले हुए बालों के बीच एक सफेद, नंगी फाँक जैसा—और वह आगे बढ़ जाती, बाल्टी से एक दूसरा कपड़ा निकालती, और जब तक उठाती, बाकी कपड़े फड़फड़ाते हुए उससे लिपट जाते···

यह मुझे याद रहेगा, उसने सोचा, यह मैं अपनी डायरी में लिखूंगा, "बिट्टी कपड़े टाँग रही थी, कमरे में पीला-सा अँधेरा था। डैरी दीवार के सहारे बैठे थे, बाहर बिट्टी को देख रहे थे। और मैं···"

वह अपने बिस्तर पर लेटा था। कितनी बार वह यह खेल अपने से खेलता

ह दुनिया को कहीं बाहर से देख रहा है, शाम, छत, बिट्टी और डैरी
ं नहीं जानता। वह उन्हें पहली बार देख रहा है। उसके ड्राइंग
ास में कहते थे—देखो, यह सेब है। यह सेब टेबुल पर रखा है। इसे
देखो। सीधी आँखों से—एक सुन्न निगाह सूई की नोक-सी सेब पर
ती। वह धीरे-धीरे हवा में घुलने लगता, गायब हो जाता। फिर, फिर
नक पता चलता—सेब वहीं है, मेज पर, जैसे का तैसा—सिर्फ वह अलग
है, कमरे से, दूसरे लड़कों से, मेज और कुर्सियों से—और पहली बार
नयी निगाहों से देख रहा है। नंगा, साबुत, सम्पूर्ण···इतना सम्पूर्ण कि
यभीत-सा हो जाता, भयभीत भी नहीं—सिर्फ एक अजीब-सा विस्मय
लेता, जैसे किसी ने उसकी आँखों से पट्टी खोल दी है। "मास्टर साहब,"
कहना चाहता, "आप जो दिखाना चाहते हैं, क्या यह वही चीज है?"
कौन-सी चीज? कैसी चीज?
यह शाम, यह बिट्टी की बरसाती, छत पर फड़फड़ाते हुए कपड़े, यह अँधेरा,
ह उठते बुखार के चमकते चहबच्चे, जिसमें वह धँसता जाता।
"मुन्नू—मैं जा रही हूँ।"
बिट्टी का चेहरा दिखायी दिया। बाल बँधे थे। माथा खाली था, न बिन्दी,
न कुछ। बिल्कुल खाली।
"कब लौटोगी?"
"आज रिहर्सल देर तक चलेगा···मैंने तुम्हारा खाना बनाकर रख दिया
है।"
"एक काम करोगी?" उसे कुछ याद आया, और वह उठकर बैठ गया।
"मेरी एक चिट्ठी डाल दोगी?"
बिट्टी उसे देखती रही।
"कैसी चिट्ठी?"
"बाबू को लिखी है।" उसने कहा।
वह अपनी रैक के पास गया, जहाँ उसकी किताबों का गट्ठर था। अपनी
नोटबुक से एक लिफाफा बाहर निकाला और बिट्टी के सामने रख दिया। बिट्टी
एक क्षण लिफाफे को देखती रही, फिर उसकी ओर देखा।
"सुनो—अगर तुमने यह लिखा है, कि तुम इलाहाबाद लौटना चाहते हो,
तो यह मैं तुम्हारे सामने फाड़ दूंगी।"
कमरे के धुंधलके में दोनों एक-दूसरे को घूरते रहे।

"जानते हो, चाचा ने क्या कहा था ?"

बिट्टी का स्वर एकाएक बहुत कोमल-सा हो आया।

"क्या कहा था ?"

"जब तक तुम बीमार हो, मेरे पास रहोगे।"

"सुनो बिट्टी···" उसने रुँधे स्वर में कहा, "मुझे अब बुखार नहीं आता।"

वह हँसने लगी—अजीब-सी हँसी—जिसका न उससे, न इलाहाबाद से, न उसके बुखार से कोई ताल्लुक था। फिर वह अचानक उसके पास आकर बैठ गयी, दोनों हाथों से उसके गालों को समेट लिया।

"और अगर मैं हूँ तो ?"

"तुम ?"

"हाँ, अगर मैं बीमार हूँ, तो तुम रुक जाओगे ?"

नीचे डॉरी की आवाज सुनायी दी। वह मोटर-साइकिल का हार्न बजा रहे थे।

वह खड़ी हो गयी। अपना पर्स उठाया और जाने लगी। फिर एक क्षण कमरे की देहरी पर टिठक गयी।

"मुझे देर हो गयी, तो जागना मत। खाना खाकर सो जाना··।"

२

काफी ऊँची हवा रही होगी। तार पर सूखते कपड़े बेतहाशा फड़फड़ा रहे थे। छतों पर पीली धूल की छत थी और आकाश कहीं न था।

नीचे कुत्ते भौंक रहे थे। मकान की मालकिन मिसेज़ पन्त लहँगा पहनकर पेड़ों के नीचे घूम रही थीं, कुत्तों के पीछे दौड़ रही थीं, उन्हें अपने पास बुला रही थीं। वे बदहवास-से होकर कभी फाटक की ओर भागते थे, कभी पेड़ों की तरफ—जैसे आँधी कोई हमलावर हो, जिसे वे मकान की सरहद पर रोक लेंगे, दाँतों में भींचकर टुकड़े-टुकड़े कर देंगे। किन्तु हवा उन्हें चिढ़ाती हुई पेड़ों पर चढ़ जाती, भड़ाभड़ घर के दरवाज़े खोल देती, सहसा मुड़कर बरामदे में लपक आती और पत्तों के साथ पागल-सी घूमने लगती। उसके साथ कुत्ते भी घूम रहे थे, कभी-कभी अचानक ठहर जाते, हैरानी से मिसेज़ पन्त के लहँगे को देखने लगते, जो हवा में गुब्बारे-सा फूल रहा था—और वे आँधी को छोड़कर खुद अपनी मालकिन पर भौंकने लगते।

वह मार्च की हवा थी। उसमें कोई बोझ नहीं था, जैसा गर्मी के अन्धड़ में होता है। वह धूल के साथ नहीं आयी थी, स्वयं धूल उसका सहारा लेकर ऊपर उठी थी। वह जल्दी-जल्दी तार से कपड़े उतारने लगा—एक ठंडी-सी बूँद उसके गालों पर गिरी—तो उसने ऊपर देखा, बादलों के बीच तारे टिमटिमा रहे थे। कुत्ते सहसा शान्त हो गये थे, हवा में झरती बारिश की अफवाह को उन्होंने भी सूँघ लिया था।

उसने दरवाज़े बन्द कर लिये। रसोई की खिड़की खुली रहने दी। उसके पीछे रोशनियों का एक द्वीप अँधेरे पर टिका था—एक लाइट-हाउस की तरह। वह निजामुद्दीन का स्टेशन था। कभी-कभी कोई ट्रेन अँधेरे की कोख से बाहर निकलती, आसपास के खँडहर चमचमा जाते, और फिर अपनी नींद के गूदड़ में लिपटकर गायब हो जाते।

वह ठिठुरने लगा। वह काँप रहा था। बुखार नहीं था, न ठण्ड थी, फिर भी

शरीर में कँपकँपी-सी दौड रही थी। खिडकी के शीशो पर पानी बह रहा था, भूरा और मटियाला; उसे याद आया, बहुत दिन पहले उसने ऐसा ही पानी देखा था। वे बारिश में भीग रहे थे, भीगते हुए भाग रहे थे। दुकानो की रोशनियाँ गँदले चहबच्चों में चमक रही थी। वे शुरू-शुरू के दिन थे।

वह इलाहाबाद से आया था। ड्रामे के रिहर्सल अभी शुरू नही हुए थे और बिट्टी खाली थी। वे सारा दिन घूमते रहते थे—कुतुब और जामा मस्जिद, हुमायूँ का मकबरा और पुराने किले में वह जीना भी, जहाँ हुमायूँ बादशाह गिरे थे। बिट्टी और उसके दोस्त उसे हर जगह ले जाते थे।

लेकिन उस दिन वे कही न जा सके। कनॉट प्लेस पहुँचते ही बारिश गिरने लगी; सर्दियों की सफेद और महीन झडी, जिसे वे दोनो गलियारे से देख रहे थे। बिट्टी ने एक लम्बा, ब्राउन स्वेटर पहन रखा था, गले मे काला मफलर लिपटा था···कन्धे पर चमडे का थैला था, जिसमे उसने दिल्ली का नक्शा ठूँस रखा था; वह हमेशा नक्शा लेकर बाहर निकलती थी।

अँधेरा होने लगा, तो बारिश ओझल हो गयी। सिर्फ लैम्पपोस्ट की रोशनी मे पता चलता था कि बूँदें अब भी झर रही हैं।

वे ओडियन सिनेमा के पीछे चले आये। वहाँ बहुत-से रेस्तराँ और ढाबे थे। फुटपाथ पर मेजें लगी थी। हवा मे एक तीखी गन्ध उठ रही थी, जिसमे गीली मिट्टी और भुनते मास का मिला-जुला स्वाद चिपका था।

अचानक बिट्टी ने उसका हाथ खीच लिया।

"खाना खाओगे ?"

"कहाँ ?"

"यही," बिट्टी ने कहा, 'देखो, कितने लोग बैठे हैं।"

मन में हिचक हुई, इस फुटपाथ पर ? लेकिन बारिश रुक गयी थी, दिन-भर घूमते रहने के कारण वह निढाल-सा हो गया था। अगर बिट्टी वहाँ बैठ सकती है, तो वह भी बैठ सकता है।

वे एक खाली मेज के पास चले आये। फुटपाथ के नीचे बारिश का पानी बह रहा था, जिसमे खाने की जूठन, पत्तलें और अखबार के कागज एक-दूसरे का पीछा कर रहे थे—लेकिन खाने मे जुटे लोग उसे नही देख रहे थे।

बिट्टी भी कही और देख रही थी। बीच सडक पर कोई मोटर आती, तो उसकी हैडलाइट का घूमता हुआ दायरा उसके चेहरे पर थिर हो जाता···वह शायद अपनी गलती महसूस कर रही थी, लेकिन बेटर पहले ही आर्डर लेकर जा

चुका था। अब वे चाहते, तो भी उठकर जाना असम्भव हो जाता।

उसके लिए यह एक विस्मयकारी एडवेंचर था—इस तरह बाहर बैठकर खाना। भट्ठी जल रही थी, सिकती रोटियों की गन्ध, आग का सेक, भागते हुए वेटर···वह असीम कौतूहल में सबकुछ देख रहा था, और तब अचानक उसकी भटकती आँखें ढाबे की छत्ती पर अटक गयीं। वहाँ एक कतार में लोहे की सलाखें लटक रही थीं, हर सलाख पर मुर्गे लटक रहे थे—पैर ऊपर, धड़ नीचे—उन जाँघियों की तरह जिन्हें सुखाने के लिए तार पर टाँग दिया जाता है। छोटे-छोटे सफेद मांस के लोथ, जो सूली पर लटकते हुए भी जीवित जान पड़ते थे··· उसने जल्दी से आँखें हटा लीं।

वह शुरू फरवरी की शाम थी और लोगों ने अभी तक सर्दियों के कपड़े पहन रखे थे। ढाबे से भट्ठी का सेक आ रहा था। जब वह इलाहाबाद लौटेगा, अपने दोस्तों से कहेगा, कैसे लोग अपनी मोटरों में आते हैं, फुटपाथ की मेजों पर खाते हैं, अँधेरे में तारों के नीचे—और तारों पर मुर्गे लटके रहते हैं।

"क्या सोच रहे हो ?" बिट्टी ने उसे देखा। मेज पर खाना रखा था। रोटी और मीट की गन्ध में पहली बार उसे अपनी भूख पता चली। वे दोनों इतने भूखे थे कि कुछ देर तक चुपचाप खाते रहे—न कुछ बोले, न एक दूसरे की तरफ देखा।

लेकिन कुछ देर बाद उसने देखा, बिट्टी खा नहीं रही है—एकटक आँखों से ढाबे की भट्ठी को देख रही है। भट्ठी के नीचे राख और कोयले और जूठे बर्तनों का ढेर लगा था। पास में दो लड़के बैठे थे—बीच में एक बच्ची, जो मुश्किल से पाँच बरस की रही होगी। वे चुप बैठे थे। भट्ठी के मैले आलोक में उनकी चुप्पी उनके अधनंगे शरीरों से कहीं अधिक बड़ी दिखायी दे रही थी।

उनकी निगाहें पासवाली मेज पर गड़ी थीं—छह चमकती आँखें। वेटर बिल लेकर आया था और वे लोग पैसे निकाल रहे थे। बच्ची जरा-सी हिली और उसके हिलते ही दोनों लड़के खड़े हो गये। वे एक साथ उठे थे, जैसे उन्होंने कोई सिग्नल देखा हो। वे धीरे-धीरे उस मेज के पास सरकने लगे, जो अभी-अभी खाली हुई थी। वेटर पैसे गिन रहा था। कोई हलचल नहीं। न कोई छीना-झपटी। आँख झपकते ही सबकुछ हो गया। जूठी प्लेटें अब साफ पड़ी थीं, खाली और साफ। सिर्फ जल्दी में बच्ची की कुहनी से एक गिलास गिर गया था, मेजपोश पर से बहता पानी नीचे बूंद-बूंद टपक रहा था।

वे लौट गये थे। वे दुबारा भट्ठी के नीचे दुबक गये थे और अपनी लूट का

माल राख के ढेर के पास जमा कर रहे थे।—आधी चबाई हुई हड्डियाँ, गोश्त के टुकड़े जिन पर इक्के-दुक्के चावल सफ़ेद चीटियों-से चिपके थे। लड़की ने अपनी फ्राक में अल्यूमिनियम का बर्तन छिपाया था, जिसमे से शोरवा नीचे बह रहा था, उसकी नंगी, धूल-सनी टाँगों पर एक लम्बी सुर्ख लकीर खींचता हुआ, बूंद-बूंद टपकता हुआ। किन्तु उन्हें उसकी चिन्ता नही थी। वे मुस्करा रहे थे। वे निश्चिन्त थे। उन्हें कोई जल्दी नहीं थी, जैसे कोई जंगली जानवर अपने शिकार को पंजे में दबाकर बेफिक्र हो जाता है, अपने आहार के अलावा चारों तरफ देखने लगता है। वे देख रहे थे—बिट्टी की तरफ और उसकी तरफ एक निरासक्त ठण्डी प्रतीक्षा में; अब उनकी बारी थी।

बिट्टी उठ खडी हुई। उसका चेहरा भट्ठी की आग मे दहक रहा था।—खास-सा सफेद। "चलो," उसने कहा और वह जड पुतले-सा उठ खडा हुआ; उसे कुछ पता नही चला, कब वे ढाबे से बाहर आये, कब बिट्टी ने बिल चुकाया। जब याद करता है तो सिर्फ वे आँखें याद आती हैं, भट्ठी के नीचे से उनकी ओर निहारते हुए, एक अन्तहीन कौतूहल से, बारिश के गीले अँधेरे को भेदती हुई, उनका पीछा करती हुई।

बस-स्टैण्ड, फायर ब्रिगेड की बिल्डिंग, स्टेट्समैन का चौराहा, जलती-बुझती ट्रैफिक लाइट···। बिट्टी चलती जा रही थी, और वह उसके पीछे भाग रहा था, हाँफ रहा था और तब उसे लगा, जैसे यह असली दुनिया नही है, यह कोई स्वप्न है, ये गीली सड़कें, ये भीड़, ये बारिश के चहबच्चे, बारहखम्भा रोड के पेड़··· कुछ भी वास्तविक नही था। सिर्फ हाँपती हुई साँसें सही है, बिट्टी की सिसकियो से बँधी हुई, जिन्हें वह कीचड में भागते हुए अपने साथ घसीटे ले जा रही थी···

वे पेडों से बाहर निकल आये। ऊपर आकाश दिखायी दिया—बारिश मे धुला दिल्ली का आकाश—जहाँ बहुत-से तारे एक साथ निकल आये थे। चलते-चलते वह सहसा बीच फुटपाथ पर ठिठक गयी, जैसे आगे पाँव बढाना निरर्थक हो। वह एक रोड-साइन के सहारे खडी हो गयी—टॉलस्टॉय मार्ग का सफेद बोर्ड, जो बारिश मे भीगा अलग कोने मे खड़ा था।

"बिट्टी," उसने कहा।

"बिट्टी," उसने दुबारा कहा।

"बिट्टी, बिट्टी, बिट्टी···" वह उसे हिला रहा था।

सड़क पर चलते लोग एक क्षण उन दोनों को देख लेते थे—बोर्ड पर पीठ टिकाये एक लड़की और उसे झिझोड़ता हुआ एक लड़का। वे ठिठक कर

से उन्हें देखते और आगे बढ़ जाते।
विट्टी..." उसका स्वर रुआँसा हो आया, "लोग देख रहे हैं।"
सने सिर उठाया, मफलर से चेहरा पोंछा, जैसे वह किसी गहरी स्याह
त जागी हो।
"चलो," उसने कहा। वह एक क्षण उसका चेहरा देखता रहा, सपाट और
—अजीब-सा कठोर, जैसे एक दिन इलाहाबाद के स्टेशन पर देखा था,
ँ वह सबसे अलग अपना सूटकेस लेकर खड़ी थी।
वे कुछ दूर चले होंगे, कि सहसा विट्टी को कुछ याद आया।
"ज़रा ठहरो," उसने पर्स से दो रुपये निकाले।
"मेरे लिए सिगरेट ले आओगे ?"
उसने पैसे लिये, और दौड़ता हुआ सप्रू हाउस के आगे चला आया। वहाँ
हमेशा एक ठिवरी की रोशनी में पान-सिगरेटवाला बैठा करता था। वह पैकेट
लेकर लौटा, तो विट्टी कुछ कदम आगे बढ़ गयी थी, एक सँकरी अँधेरी गली में
झाँक रही थी।
"इधर आओ।" उसने पीछे मुड़कर उसे बुलाया। दोनों तरफ झाड़ियाँ थीं,
ऊपर ईंटों की एक दीवार, जो किसी मकान का पिछवाड़ा थी। बीच में बजरी की
सड़क, जिस पर बारिश का पानी चमक रहा था।
"तुम्हें कुछ याद आता है ?"
वह उसकी तरफ देखने लगा।
"क्या ऐसा नहीं लगता, हम कहीं इलाहाबाद में हैं—और गली पार करते
ही अपना घर आ जायेगा !"
उसने पहली बार देखा, विट्टी की आँखें गीली हैं, लैम्पपोस्ट के आलोक में
चमकती हुई, जैसे बारिश के बाद वह गली दिखायी दे रही थी।
ढाबे की उस रात के बाद उसमें विचित्र परिवर्तन हुआ था। वह कभी
कभी मुँडेर पर घण्टों खड़ी रहती, और वह कमरे में बैठा उसे देखता। कुछ लो
अपने अकेलेपन में काफी सम्पूर्ण दिखायी देते हैं—उन्हें किसी चीज की ज़रू
महसूस नहीं होती। किन्तु विट्टी में कोई ऐसा मुकम्मिलपन नहीं दिखायी देता थ
वह जैसे कहीं बीच रास्ते में 'ठिठकी-सी' दिखायी देती थी, जबकि दूसरे लोग
बढ़ गये हों। बीच में जो लोग ठहर जाते हैं, उनमें अकेलापन उतना नहीं, जि
अधूरापन दिखायी देता है— जैसे वे सड़क पर कुछ देख रहे हों और यह
भी चलने का ही हिस्सा जान पड़ता था।

पता नहीं, वह क्या देखती थी।

उसकी नींद बहुत हल्की थी, जरा-सा खटका सुनते ही वह जाग जाता था। लेकिन उस रात उसे कोई खटका नहीं सुनायी दिया था, फिर भी वह हड़बड़ा-कर उठ बैठा था। खटके से नहीं, सन्नाटे से, जब पासवाला व्यक्ति भी जाग जाता है और दोनों के बीच अँधेरे की दीवार ढह जाती है। सिर्फ साँसें सुनायी देती हैं, गूँगी, साफ और अकेली, एक के बाद दूसरी, तीसरी, भूखी और तरसती हुई—

"मुन्नू··· तुम जाग रहे हो ?"

"क्या बिट्टी ?"

वह उठकर बैठ गया—मूढ़ों के बीच देखा, सिर्फ बिट्टी का आधा धड़ दिखायी दिया, घुटनों के बीच उसका सिर, दरवाजे की तरफ उठा हुआ।

"तुमने उन्हें देखा ?" उसका स्वर बहुत धीमा हो आया, जैसे वह किसी से छिपकर उसके कानों में फुसफुसा रही हो।

"वे दरवाजे पर खड़े थे।"

"कौन···कौन खड़े थे ?"

वे हँस रहे थे।"

"बिट्टी !"

"वह बच्ची भी !" बिट्टी ने कहा, "वे तीनों !"

उसे अचानक ध्यान आया, बिट्टी पागल है, उसे मालूम था, लेकिन अब कोई सन्देह नहीं रहा था। उसने बीच के मूढ़े हटा दिये और बिट्टी के बिस्तर की तरफ झुक आया।

"बिट्टी—क्या बात है ?"

वह कुछ देर चुपचाप अँधेरे में उसे ताकती रही।

"मुन्नू, हमें यह सब छोड़ देना चाहिए।"

वह उसकी ओर देखता रहा।

"क्या छोड़ देना चाहिए ?" उसने चारों तरफ देखा, बिट्टी की बरसाती, किताबें, रिकार्डप्लेयर—यह उसकी गृहस्थी थी। इसे छोड़कर वह कहाँ जाना चाहती थी ?

क्या प्रश्नों के जवाब होते हैं ? यह हमेशा सच नहीं होता। आधी नींद की बुदबुदाहट में हम कितना कुछ पूछते हैं, खाली दीवारें उन सब प्रश्नों को सोख लेती हैं। दूसरे दिन—सुबह की चकमकाहट में—कुछ भी याद नहीं रहता; हम

सोचते भी नहीं, पिछली रात कौन-से शर्म और पछतावे ने सिर उठाया था।

वह उस रात बिट्टी के साथ न होता, तो शायद पता भी नहीं चलता, उसने क्या पूछा था, वह क्या जानना चाहती थी ?

वह कोशिश करता तो भी शायद कुछ नहीं समझ पाता। उसकी उम्र भी ज्यादा नहीं थी···वह बिट्टी से सिर्फ सात-आठ साल छोटा था लेकिन छोटी उम्र में यह अन्तर भी बहुत होता है। वह सिर्फ झलकें-सी पाता था; रेगिस्तान में मरीचिका के टापू चमकते थे—वह उनके पीछे भागता और देखता, जहाँ पानी की चमक थी, वहाँ रेती का चूरा है।

वह लौट आता था। बिस्तर के अपने हिस्से पर लेट जाता था। वहाँ से दीवार पर एक बहुत बूढ़ी औरत का फोटो दिखायी देता था। बिट्टी से पता चला, वह कोई मदर टैरेसा हैं, कलकत्ता में कोढ़ियों और भिखारियों के बीच रहती हैं। लेकिन फोटो में वह मुस्करा रही थीं, दो बंगाली लड़कियों के पास बैठी थीं। बिट्टी ने वह चित्र किसी अखबार से काटकर दीवार पर चिपकाया था। जब बाहर हवा चलती, फोटो फड़फड़ाने लगती; अँधेरे में आँखें मूँदे वह चुपचाप उसकी फड़फड़ाहट सुनता रहता, जैसे कोई चिमगादड़ बार-बार उड़ता हुआ दीवार से टकरा जाता हो।

३

किन्तु उस रात कोई हवा नहीं थी। धूल का झक्कड़ बहुत जल्दी उड़ गया। उसने दरवाजे-खिडकियाँ खोल दीं, बारिश के बाद तारे निकल आये थे, बिल्कुल साफ और धुले हुए। आँधी एक धोखा थी, अब उसका कहीं पता नहीं था। सेमल का पेड़ सीधा खडा था और उसकी टहनियाँ पानी में भीगी हुई चाँदी की झालरों-सी चमक रही थी।

वह लेट गया। बहुत देर तक नींद नहीं आयी, लेकिन वह जाग भी नहीं रहा था, नींद के हाशिये पर घूम रहा था, जहाँ इलाहाबाद की चीजें दिल्ली में और दिल्ली की घटनाएँ इलाहाबाद में लेन-देन करती थीं; नींद की सीमा पर स्मृतियों की यह स्मगलिंग उसे हमेशा अजीब जान पड़ती थी···न कोई रोक-टोक, न कोई सिपाही, न पासपोर्ट की परेशानी; वे एक सरहद से दूसरी सरहद पार करती रहतीं···फिर दरवाजे पर खटखटाहट सुनायी दी और वह फैसला नहीं कर सका, यह सपने की खटखटाहट है या असली; वह आँखें खोल-कर प्रतीक्षा करने लगा, जब तक उसे दुबारा खटखटाहट सुनायी नहीं दी। सिर्फ बिट्टी हो सकती है, उसने सोचा। वह अक्सर दरवाजे की चाभी ले जाना भूल जाती थी।

उसने बत्ती जलायी और बाहर छत पर चला आया। जीने पर बहुत-सी आवाजें सुनायी दे रही थीं। नीचे डैरी की मोटरसाइकिल खडी थी। उसकी जलती हुई हैडलाइट में पड़ोस के मकान जगमगा रहे थे। इंजन अँधेरे में घुर-घुरा रहा था।

सीढ़ियों में कोई लडकी हँस रही थी।

उसने दरवाजा खोला तो सबसे ऊपरी सीढ़ी पर नित्ती भाई दिखायी दिये। उनका चेहरा नहीं, उनकी टाँगें। वह इतने लम्बे थे कि जीने की रोशनी उनकी हाफ-पैंट और पेशावरी चप्पलों पर गिर रही थी, जिन्हें देखकर ही उसे पता चल गया, वह कौन है, हालाँकि उनका चेहरा अँधेरे में छिपा था।

"माफ करना, हमने तुम्हें जगा दिया।"

वह झेंप गया, दरवाजे से हट गया। वह बहुत दिनों बाद घर आये थे, इसलिए पाइप के तमाखू की गन्ध बिल्कुल नयी जान पड़ी। वह गन्ध हमेशा उनकी देह से चिपकी रहती थी।

"बुखार कैसा है ?" उन्होंने नीचे झुककर अपने दोनों हाथों से उसके गालों को समेट लिया···गुनगुने-से हाथ, जिन पर हमेशा पसीने की नमी रहती थी।

"अब ठीक हूँ," उसने कहा।

"कौन है ऊपर ?" जीने से इरा की आवाज सुनायी दी। वह हाँपती हुई ऊपर आयी थी। उसके दोनों हाथों में बड़े-बड़े थैले थे, दोनों ही अटाअट भरे थे। रात के समय जब वे आते थे, तो अपने साथ हजारों चीजें ले आते थे, सलामी, चीज, सासेजेज, बियर, और ब्राउन डबलरोटी, जो उसे सबसे अच्छी लगती थी।

"मुन्नू, जरा इन्हें सँभालो !"

इरा ने दोनों थैले उसे पकड़ा दिये; फिर उसे रोक लिया, एक थैले से अपना पर्स निकाला, चेहरे को रूमाल से पोंछा, फिर उसकी ओर देखा, "कैसी तबीयत है ?"

उसने सिर हिलाया।

"सिर हिलाने से पता नहीं चलता, बोलते क्यों नहीं ?"

"ठीक हूँ।" उसने कहा।

"ठीक हो—तो बाहर क्यों नहीं निकलते ?"

"कहाँ ?" उसने उत्सुकता से इरा को देखा।

वह आगे कुछ नहीं कह सकी। सीढ़ियों पर बहुत-से लोग ऊपर आ रहे थे। वह दरवाजे से हट गया, रसोई में आकर साँस ली। दोनों थैलों को मेज के नीचे रख दिया। बिट्टी के दोस्त जब भी आते, वह जल्दी से जल्दी अपने कमरे में चला आता। वे एक ऐसी दुनिया से आते थे, जिसका उससे कभी वास्ता नहीं पड़ा था। वे उससे हँसी-मजाक भी करते तो भी लगता यह भ्रम है, यह सतह है; उसके नीचे गड्ढा-सा दिखायी देता, जहाँ पहुँचते-पहुँचते उसका धीरज छूट जाता। वह मुड़ जाता; उनके सामने से हट जाता; ऐसे मौकों पर उसे हमेशा 'इनविज़िबल मैन' की कहानी याद आ जाती; क्या ऐसा नहीं हो सकता, कि जब चाहे वह भी 'अदृश्य' हो सके; वह सबको देखे, लेकिन कोई उसे न देख सके ?

उसने कमरे की बड़ी बत्ती बुझा दी; सिर्फ टेबिल-लैम्प को जलते रहने दिया। वे सोचेंगे, वह सो गया है और भीतर नहीं आयेंगे। किन्तु उसकी नींद

बिल्कुल उड़ गयी थी; वह अपने बिस्तर पर बैठ गया और बाहर देखने लगा।

वह कोई चाँदनी रात नहीं थी, किन्तु छत पर एक उजला, पीला-सा उजाला फैला था। दिल्ली में मार्च की रातें ऐसी ही होती थीं, अँधेरे में भी सबकुछ दिखायी देता था। पता नहीं कितने लोग थे, लोग ज्यादा नहीं, शोर ज्यादा था; एक पतले झीने परदे पर उनकी परछाइयाँ घूम रही थीं। वे अक्सर रिहर्सल के बाद यहाँ आ जाते थे। वैसे सबके अपने-अपने ठौर-ठिकाने थे, लेकिन बिट्टी की बरसाती सबसे सुरक्षित जगह थी। यहाँ कोई रोक-टोक करनेवाला नहीं था। मिसेज पन्त बहुत जल्दी सो जाती थीं; वैसे भी छत इतनी ऊँची थी कि ऊपर की आवाजें नीचे जाते-जाते झर जाती थीं। सिर्फ हवा में एक हल्की-सी फुसफुसाहट-सी रह जाती थी।

लेकिन कमरे से उन्हें साफ-साफ सुना जा सकता था। वह अँधेरे में लेटा रहता और अनुमान लगाता, कौन-सी आवाज किसकी है। कभी-कभी, कोई बिल्कुल अपरिचित स्वर सुनायी दे जाता और वह अपनी उत्सुकता न दबा पाता; दबे पाँव देहरी तक आता, बाहर झाँकता, कहीं कोई अजनबी दिखायी दे जाता, लेकिन अक्सर वही लोग होते थे, जिन्हें वह पहचानने लगा था; इरा मुँडेर के सहारे बैठी होती, आधी लेटी-सी; डैरी और निक्की भाई पानी की टंकी के पास, जहाँ वे अपने गिलास जंगले पर रख देते और बिट्टी—वह कभी एक जगह दिखायी देती, कभी दूसरी जगह और उसे लगता, वह हर जगह है, जंगल की उन आत्माओं की तरह जो हवा में उड़ती हुई हर कोने में पहुँच जाती हैं।

किन्तु उस रात बहुत देर तक बिट्टी दिखायी नहीं दी। उसके भीतर एक काँटा-सा कसकने लगा—उसे शायद चिट्ठी की बात लग गयी थी; बार-बार उसका वाक्य सुनायी दे जाता, अगर मैं बीमार हूँ तो ? शायद वह उसे डराना चाहती थी···वह बेचैन-सा हो गया। वह छत पर जाकर उनसे पूछेगा, बिट्टी कहाँ है; किन्तु तभी बाथरूम का दरवाजा खुला और वह किचन में दिखायी दी···वह नहाकर आयी थी। कपड़े भी बदल लिये थे, ढीला-ढाला सफेद कुर्ता और खद्दर का पायजामा। बाल खुले थे और वे भी भीगे-से दिखायी देते थे। मौके-बेमौके बिट्टी कभी इतनी सुन्दर दिखायी देती, कि वह साँस रोके एकटक उसे देखता रहता।

"तुम आज फिर चाभी भूल गयी।" उसने कहा।

"मुझे नहीं मालूम था, इतनी देर हो जायेगी।" वह तौलिये से अपने गीले बालों को झाड़ रही थी, पानी की बूँदें बार-बार उड़कर उसके चेहरे को छू

टूडियो से निकलते ही आँधी ने पकड़ लिया···यहाँ भी आयी होगी।"
रिश भी हुई थी।" उसने कहा। उसे खुशी हुई, शाम का विषाद अब
हरे पर नहीं था; वह बहुत हल्की-सी दिखायी दे रही थी। उसने बालों
में कस दिया और उसके बिस्तर के कोने में आकर बैठ गयी।
मैंने तुम्हारी चिट्ठी डाल दी।" उसने कहा।
'पढ़ी थी ?"
"हाँ, मैंने भी कुछ लाइनें जोड़ दी हैं।"
"क्या लिखा है ?"
"यही कि तुम्हें बुखार रहता है···अभी दो-तीन महीने तुम्हें और रुकना
ड़ेगा।"
"कोई तुम्हारे झूठ पर विश्वास नहीं करेगा।" उसने हँसते हुए कहा।
वह उठ खड़ी हुई, "सुनो, अब तुम सो नहीं सकते, कुछ मेरी मदद
करोगे ?"
वह उसके साथ रसोई में चला आया। थैलों से चीजें निकालकर बाहर
रखने लगा। चिट्टी ने बीच में उसका हाथ रोक लिया—
"यह सब मैं कर लूंगी, तुम बाहर दो चटाइयाँ बिछा आओ।"
वह बाहर चला आया। धूल और अन्धड़ के बाद तारे निकल आये थे और
वे इतने चमकदार थे कि लगता था जैसे हवा में एक सुनहरा-सा चूरा भर रहा
है न रोशनी न अँधेरा, बीच की कोई चीज; अँधेरे को देखो तो वह रोशनी-सा
बन जाता, रोशनी को देखो तो अँधेरा-सा। कभी-कभी कोई पक्षी मकबरे से उड़-
कर छत पर फड़फड़ाने लगता; लोगों की आवाजें उसके पंखों तले दब जातीं।
और जब वह दुबारा हवा में उड़ता, तो बातों की कतरनें फिर आपस में जुड़
जातीं, जैसे कुछ हुआ ही न हो; हवा में सिर्फ एक थरथराहट-सी काँपती रहती।
उसे अपने कन्धे पर हाथ का स्पर्श महसूस हुआ। वह मुड़ा तो डैरी
दिखायी दिये। दाढ़ी पर बियर के झाग छितर आये थे। ऐनक के भीतर दो थकी
अधमुँदी-सी आँखें उसे घूर रही थीं।
"चिट्टी कहाँ है ?"
"रसोई में···अभी आती होगी।"
वह दो मुड़ी हुई चटाइयों के पीछे छिप-सा गया था।
"मुझे दो, इधर सूखा है।"
उन्होंने अपना गिलास नीचे रख दिया और उसके साथ चटाई

लगे; फिर खुद ही उनके [illegible] बैठ गये।

"क्या करते रहे इतने दिन ?"

"मुझे बुखार आता था," [illegible] था, वह चुपचाप सुन लेते थे; [illegible] नहीं थे। [illegible] में वह बिट्टी से बिल्कुल [illegible] थी; जबकि वह ऊपर रहते थे; [illegible] नीचे जाते हैं, वे ऊपर आकर [illegible] हैं। [illegible] लेकिन चुप रहते थे। वह घण्टों उनके [illegible] में एक वही थे, जिनके साथ [illegible]

"बिट्टी ने तुम्हें रिकार्ड दिखाये ?"

"नहीं···कब लाये थे ?"

"इस इतवार को।" उन्होंने कहा। [illegible] बहुत सस्ते में मिल गये।"

वह मुस्कराने लगा। उन्हें देखकर [illegible] पागल हैं। हर इतवार को [illegible] रिकार्डों और किताबों की दुकानों [illegible] जैसे कोई खजाना खोदकर लाये हों। [illegible] जिसका चीजों से इतना [illegible] छोड़कर भाग निकले थे; लेकिन [illegible] कभी कोई चर्चा नहीं करते थे।

क्या इसीलिए वह इतना [illegible] ?

"तुम कभी घर नहीं आते ?" [illegible]

"बिट्टी हमेशा बाहर रहती है।" [illegible] तब आऊँगा।"

"अभी नहीं···अप्रैल में। [illegible]"

"घर के बाहर ?"

"और कहाँ ?" [illegible] सा उत्साह [illegible]।

"हमारे लॉन के [illegible] रिहर्सल करते थे।"

उसने सोचा, वह [illegible]!

"परदा कहाँ लगाते हैं ?"

"उसकी कोई ज़रूरत नहीं; तुम आओगे, तो खुद देखोगे···सिर्फ़ पेड़ और झाड़ियों से ही काम चल जाता है।"

उसे यह चमत्कार-सा जान पड़ा, बाहर हवा में चलता-फिरता नाटक, जैसे वे यहाँ छत पर बैठे हैं, खुले आकाश के नीचे। हवा ऊपर उठी थी और सेमल का पेड़ सरसरा रहा था। छत के दूसरे कोने से आवाज़ें तिरती हुई उनके पास चली आती थीं। मकबरे के पीछे जंगल से गीदड़ों की रिरियाहट सुनायी दे जाती, फिर वे अचानक चुप हो जाते और खामोशी के क्षणभंगुर दायरे में ट्रेन की सीटी सुनायी दे जाती और तब उसे इलाहाबाद की याद हो आती, वह छत, वह रात, उन लोगों के पीछे छिपी एक टिमटिमाती रोशनी और वह उसे अपने भीतर के भुलावे में दबोच लेता, चारों तरफ देखता, कोई उसे देख तो नहीं रहा ?

नहीं, कोई नहीं। सब अपनी बातों में मगन बैठे थे। सिर्फ नित्ती भाई खड़े थे, टंकी के नीचे मुंडेर के पास, अपनी बुझती हुई पाइप बार-बार जला लेते थे। अचानक उनकी नज़र उस पर पड़ी और वह हवा में हाथ हिलाने लगे, जैसे यह उनके बीच कोई पुराना सिग्नल हो।

"मैं अभी आता हूँ", उसने डैरी से कहा, किन्तु इस बीच बिट्टी उनके पास आकर बैठ गयी थी। वह दीवार से सिर टिकाकर बैठी थी और डैरी उससे कुछ कह रहे थे और उसकी आँखें उनके चेहरे पर टिकी थीं और तब न जाने क्यों, जाने से पहले भीतर एक कमीनी-सी ईर्ष्या उमड़ने लगी, बिट्टी का डैरी के इतने पास बैठना, सफेद कुर्ते का ऊपरी बटन खुला था और उसकी नंगी गर्दन एक साफ-सफेद डंठल की तरह ऊपर उठी थी और गीले बालों के जूड़े से कुछ बाल उसके कानों पर झूल रहे थे और वह डैरी को एकटक देख रही थी और तब वह ईर्ष्या एक धुंधली-सी पीड़ा में बदल गयी और वह पीड़ा भी बहुत कमीनी थी। वह ठहरा नहीं। वह गिलासों और बोतलों से बचता हुआ नित्ती भाई के पास चला आया।

किन्तु नित्ती भाई तब तक उसे भूल गये थे। वह बहस के किसी ऐसे कोने में मुड़ गये थे, जहाँ उसका होना-न-होना बराबर था। थियेटर की दो लड़कियाँ और एक लम्बा-सा हिप्पी लड़का उन्हें घेरकर बैठे थे और वह उन्हें समझा रहे थे, किस तरह हिन्दुस्तान में कम खर्च पर इतने मकान बन सकते हैं, कि किसी आदमी को फुटपाथ पर न सोना पड़े। वह जब से इंग्लैण्ड से लौटे थे, इस एक

विषय पर बोलते थे, किन्तु इतने धीमे, शालीन अंग्रेजी उच्चारण में कि पता नही चलता था, कि यह विषय उनका एकमात्र पैशन है और वह पीकर बोल रहे हैं···वह इंग्लैण्ड में बरसों मार्क्सवादी आर्किटेक्ट्स के बीच रहे थे, किन्तु हिन्दुस्तान लौटने पर एक दिन अचानक उन्हे पता चला, कि गाधी सबसे ज्यादा रेडीकल आदमी थे; वह बोलते हुए बार-बार अपनी पाइप सुलगाते थे, और तब उन्हें देखते हुए सहसा उसकी पीड़ा बुझ गयी, ईर्ष्या भी, इलाहाबाद का अकेलापन भी। नित्ती भाई की बातें सुनते हुए उसे हमेशा अपने दुःख छिछोरे जान पडते, शायद इसलिए कि वह इतने अद्भुत ढंग से अधूरे थे; कुछ लोग इतने सम्पूर्ण ढंग से अधूरे होते हैं, कि अपना अधूरापन पोगा-सा जान पड़ता है। उनकी हाफ-पैंट, नंगी, घने बालों से ढँकी टाँगें, उनकी पेशावरी चप्पलें एक तरफ—उनका साफ, स्वच्छ आक्सफोर्ड उच्चारण दूसरी तरफ—बीच में वह खुद एक असंगत-से अजीब आदमी—जो चेखव के सी-गल को स्ट्रिनबर्ग के किसी नाटक से भी ऊँचा मानते थे और डैरी से लडते थे, वह खडा रहा। उसे बुरा नहीं लगा, कि वह उसे बिल्कुल भूल गये हैं। वह एकटक उन्हे सुनता रहा, हालांकि उसे समझ मे कुछ भी नही आ रहा था।

नित्ती भाई को अचानक महसूस हुआ, कि वह लगातार उनकी तरफ घूर रहा है। वह आधे वाक्य के बीच रुक गये, उसके कन्धे पर हाथ रखा, "मुन्नू बेटा, देखो सबके गिलास खाली पडे हैं!"

उन्होंने प्यार से उसकी ओर देखा, लेकिन उनकी आँखो मे कुछ इतनी अशान्त-सी बेचैनी थी, कि वह जल्दी से मुड गया, उसे मालूम था, वह क्या चाहते हैं, किन्तु उनके हाथ को अपने कन्धे से छुड़ाना असम्भव जान पडा। उसने किसी किताब में 'दिल की झाड़ियो' के बारे मे पढा था। कुछ लोगो के भीतर झाडियाँ उगने लगती हैं और उनका दिल धीरे-धीरे दुनिया से डरकर झाडियों मे दुबक जाता है, वही छिपा रहता है; नित्ती भाई जहाँ भी हो, जैसे भी हो, उसे हमेशा झाड़ियों से घिरे दिखायी देते थे···उसने धीरे-से उनका हाथ अपने कन्धे से अलग कर दिया और रसोई की तरफ चलने लगा। उसे मालूम था, वह क्या पी रहे है।

छत लाँघते हुए वह एक क्षण ठिठक गया। चारों तरफ देखा, सब लोग अलग-अलग गुच्छो में सिमट आये थे, एक-दूसरे से बेखबर। रात की पार्टियो में हमेशा एक क्षण आता था, जब किसी को कुछ नही मालूम होता था, बाहर-भीतर क्या हो रहा है। बातों के झिलमिले में बाकी दुनिया झर जाती थी। सिर्फ एक हल्का-सा शोर अदृश्य लहरों-सा ऊपर उठता था, नीचे गिरता था, एक सफेद

तलछट-सा छोड़ जाता था।

ऊपर चाँद निकल आया था, बहुत छोटा, एक सफेद कटे हुए नाखून-सा। अब पहले जैसा धुँधलका नहीं था, न कोई परदा, न परछाईं, न धुन्ध; हर चीज़ अपने में अकेली, ठोस खड़ी थी; गमले, कुर्सियाँ, दरियों पर बैठे लोग। वह सबके बीच रास्ता टटोलता हुआ रसोई में चला आया। बाल्टी के ठण्डे पानी में सिर्फ बियर की बोतलें डूबी थीं। वह नित्ती भाई की 'चीज़' ढूँढ़ने लगा। नीचे आलमारी का दरवाज़ा खोला, तो खट् से आवाज़ हुई।

"कौन है?"

वह ठिठक गया। कमरे के भीतर झाँका, तो इरा दिखायी दी। उसे वहाँ देखकर उसे कुछ हैरानी हुई; वह उसके बिस्तर पर लेटी थी; रिकार्ड-प्लेयर खुला था। बाकी कमरे में अँधेरा था, सिर्फ टेबुल-लैम्प का प्रकाश उसके चेहरे पर गिर रहा था। वह जिज्ञासा-भरी आँखों से उसे ताक रही थी।

"क्या ढूँढ़ रहे हो?"

"व्हिस्की," उसने कहा।

"कौन माँग रहा है?"

वह एक क्षण झिझका, फिर साहस बटोरकर कहा—"नित्ती भाई ने माँगी थी।"

एक हल्की-सी छाया इरा के चेहरे को लाँघ गयी।

"वह अब भी पी रहे हैं?"

उसने कुछ इतने धीमे-से कहा, कि वह समझा नहीं, वह उससे पूछ रही है या अपने से कुछ कह रही है।

"वहाँ और लोग भी हैं।" उसने कहा।

किन्तु उसने शायद सुना नहीं। वह बिस्तर पर लेटे हुए सिर्फ छत को ताक रही थी।

"तुम बाहर नहीं आओगी?" उसने कहा।

"बाहर?" उसने कुछ चौंककर उसकी ओर देखा, "नहीं, मैं यहाँ ठीक हूँ।"

वह हमेशा इरा को 'तुम' कहा करता था। बिट्टी के दोस्तों में वह सबसे छोटी जान पड़ती थी। उसने शायद ही कभी उसे साड़ी पहने देखा हो; वह हमेशा भूरे रंग की कार्डराय की पैंट और बहुत ऊँचा खाकी कुर्ता पहने रहती थी। उम्र का भेद सिर्फ़ आँखों के नीचे झाँइयों पर अटका था, किन्तु जब कभी वह

हँसती, तो वह भी झर जाता था।

"तुम्हे जल्दी है ?" उसने सिर उठाकर उसे देखा।

"नही, क्यों ?"

"मालूम है, बिट्टी की सिगरेटें कहाँ हैं ?"

"ठहरो, मैं अभी देता हूँ।"

वह किताबों की रैक के पीछे चला आया; वहाँ अँधेरा था। वह कुछ देर चुप खड़ा रहा। डैरी का कोई रिकार्ड होगा, जैज नही, कोई दूसरा, एक शान्त, धीमी आवाज ऊपर आ रही थी, ठंडी और साफ, बाहर की आवाजों से अलग, किन्तु उनके साथ-साथ एक पहाड़ी नाले की तरह चलती हुई, किसी सुरंग में रास्ता भूलकर दुबारा बाहर निकलती हुई···अचानक एक गहरी उदासी ने उसे घेर लिया, उदासी भी नही, सिर्फ एक धुँधली-सी चाहना, जो गले तक लबालब भर आती है, न भीतर जाती है, न बाहर निकल पाती है···

"कहाँ हो तुम ?" इरा की आवाज सुनायी दी और वह सँभल गया; किताबों के पीछे से बिट्टी का पैकेट और माचिस बाहर निकाली और मूढ़ों के आगे चला आया।

"तुम कुछ भी नही पी रही ?" उसने कहा।

वह सिगरेट सुलगाकर बाहर देखने लगी।

"मेरे बदले मे वह पी रहे हैं।" उसने कहा।

"तुम गुस्सा कर रही हो।"

वह हँसने लगी···उसका हाथ खींचकर अपने पास बैठा लिया। कभी-कभी उसे लगता था, इरा जो कुछ दूसरों से नहीं कह सकती, उससे कह सकती है। वह खुद भी उससे ऐसी बातें कह देता था, जो कभी बिट्टी से कहना असम्भव जान पड़ता था। इस क्षण भी यह स्वाभाविक जान पड़ा, कि वे सबसे अलग एक दूसरे के साथ भीतर बैठे हैं; इरा के साथ उसे लगता था, वह कुछ बड़ा हो गया है और शायद इरा को लगता था, वह कुछ छोटी हो गयी है। वे अनजाने में बराबर-से हो जाते थे।

"किसका रिकार्ड है यह ?" उसने पूछा।

"हायडन का··· मैंने इसे पहली बार लन्दन के कन्सर्ट में सुना था।"

"तुम अकेली जाती थी ?"

वह कुछ देर कुछ नही बोली, फिर दोनों आँखें ऊपर उठायीं।

"नित्ती भाई के साथ।" उसने कहा, "मैं जब तक उनसे नहीं मिली थी···

कहीं भी अकेले जाते हुए डरती थी।"

उसे लगा, उसकी उदासी बहुत कम हो गयी है, हालाँकि रिकार्ड का स्वर वैसे ही अँधेरी गुफाओं के भीतर बँटता हुआ ऊपर आ रहा था···

"तुम लन्दन में ही रहती थीं ?" उसने पूछा।

"और कहाँ ?" उसने कौतूहल से उसकी ओर देखा।

"नहीं, ऐसे ही," वह कुछ झेंप-सा गया, "इंग्लैण्ड में दूसरे शहर भी तो हैं।"

"जैसे ?"

"मैनचेस्टर," उसने कहा। "यार्क शायर"।

"रीजेन्ट पार्क ?" उसने कहा।

"वह कोई शहर है ?"

वह हँसने लगी, "हम उसके सामने रहते थे। मैंने पहली बार शेक्सपियर का नाटक वहाँ देखा था।"

"पार्क में ?"

"गर्मियों में···" वह ठहर गयी, चुपचाप सिगरेट पीती रही, एक अजीब-सा खयाल उसके चेहरे पर चला आया।

"वे बाग में कुर्सियाँ बिछा देते थे। हर सीन के बाद स्टेज घूमता था और मैं सोचती थी, पेड़ भी घूम रहे हैं, लेकिन वे एक जगह खड़े रहते थे।"

"तुम बहुत छोटी थीं ?"

"मैं उन्हीं दिनों हिन्दुस्तान से आयी थी।" उसने कहा। "मैं सोचती थी, सारा इंग्लैण्ड रीजेन्ट पार्क में फैला है।"

रिकार्ड का स्वर बहुत धीमा हो गया था—सिर्फ वायलिन की एक अकेली लकीर हवा में घूम रही थी···लन्दन, रीजेन्ट पार्क, गर्मियों के दिन, दिल्ली की बरसाती में ये सब किसी दूसरी दुनिया की चीज़ें जान पड़ती थीं। उसे कुछ हैरानी-सी हुई कि बिट्टी के कितने दोस्त अपनी आधी ज़िन्दगी बाहर गुज़ार-कर लौटे थे।···इसीलिए वे अजीब-से कोनों में पड़े रहते थे···निक्की भाई का दफ्तर, जहाँ वह सोते थे और इरा, वह सबसे छिपती रहती थी, होस्टल से स्टूडियो और स्टूडियो से होस्टल—सिवा उन रातों के, जो वह बिट्टी की बरसाती में बिताती थी···

"तुम्हें यहाँ काफी अजीब लगता होगा," उसने इरा को देखा।

"अजीब कैसा ?"

"तुम इतने साल बाद हिन्दुस्तान लौटी हो।"

"पहले लगता था," उसने धीरे-से कहा, "अब थियेटर में पता भी नहीं चलता, कहाँ हूँ।"

वह क्षणभर रुकी, जैसे अपनी आँखों में उनकी आतुरता को थाह ले रही हो, "जब मैं लन्दन में थी, तो हमेशा डैडी से कहती थी कि हमें अपने देश लौटना चाहिए और वे कहते थे, इस उम्र में उन्हें कौन नौकरी देगा, और तब मुझे काफी डर लगता था कि मैं भी एक दिन उनकी तरह वापिस नहीं लौट सकूँगी··· मैं बहुत जल्दी में थी।" उसने कहा।

"इरा, तुम्हें पछतावा है ?"

"पछतावा कैसा ?"

"यहाँ आने का ?"

"नहीं, पछतावा नहीं, लेकिन···" वह एक क्षण रुकी और अचानक हँसने लगी, "मुझे लगता नहीं, मैं हिन्दुस्तान में हूँ।"

"फिर कहाँ हो ?"

"थियेटर में···" वह अब भी हँस रही थी, "अपने होस्टल के कमरे में, यहाँ तुम्हारे पास···"

"मेरे पास ?" वह सचमुच उसके इतने पास बैठी थी कि हाथ बढ़ाकर वह उसका चेहरा छू सकता था; दो चोटियों के बीच एक पीला धुला हुआ घेरा, जो उसका मुँह था, झूठी हँसी में खुला हुआ। ऊपरी होंठ पर पसीने की एक बूँद आ टिकी थी और आँखें दरवाजे पर थिर थीं, निश्चल, एकटक किसी को देखती हुई; हठात् वह पीछे मुड़ा, तो वह दिखायी दिये; वह टेबिल-लैम्प के पीछे खड़े थे, इसलिए शुरू में पता नहीं चल सका, कि वह यहाँ कितनी देर से खड़े थे; वह कुछ आगे आये, तो रोशनी में उनका चेहरा दिखायी दिया। उनके हाथ में खाली गिलास था और वह मुस्करा रहे थे।

"कहाँ गायब हो गये तुम ?"

उन्होंने धीरे-से उसके बालों को झिंझोड़ दिया।

"मैं आ रहा था।"

वह उठने को हुआ, कि अचानक उसे अपने कन्धों पर एक ठण्डी-सी गिरफ्त महसूस हुई। इरा ने उसे बिठा दिया, खुद खड़ी हो गयी। नित्ती भाई के पास आयी, और तब उसे लगा, वह उनके सामने बहुत छोटी दिखायी देती है, उसका सिर उठा था, नित्ती भाई की छाती को छूता हुआ।

"सुनो, अब हमें चलना चाहिए।" उसने कहा। उसका स्वर बीच में सूखा

ंयत था, किन्तु किनारे एक अजीब आत्मीयता में भीगे थे। उसमें आग्रह
ी बरसों एक-दूसरे को जानने पर आता है।
"चलते हैं; इतनी जल्दी क्या है ?" नित्ती भाई ने कहा।
वह दीवार से सटे खड़े थे; टेबिल-लैम्प का मद्धिम आलोक उनके चेहरे पर
रहा था···और तब पहली बार उसे उनकी उम्र का सफेद तितीरीपन
खायी दिया; सुबह की शेव कब की खत्म हो गयी थी, उसकी जगह, गालों पर
ा बासी, नीली छायाएँ उग आयी थीं। आँखों पर चकाचौंध-सा भाव था, जो पी ने
र दूसरे लोगों पर भी आता है, किन्तु नित्ती भाई पर वह पुरानी बर्फ-सा जम
गया था।
"मुन्नू, थोड़ी-सी लाओगे ?" उन्होंने अपना खाली गिलास आगे बढ़ाया, तो
इरा ने उसे पकड़ लिया।
"तुम और नहीं लोगे ?"
"क्या बात है ?" उन्होंने अजीब कौतूहल से इरा को देखा। "मैं बिल्कुल
ठीक हूँ।"
"मुझे मालूम है, तुम कितना ठीक हो।"
"तुम्हें सब मालूम है।" वह एक क्षण रुके, अपने चेहरे पर हाथ फेरा और
दुबारा कहा, "तुम्हें सब कुछ मालूम रहता है ?"
इरा का चेहरा पीला-सा पड़ गया, सिर्फ एक तह तक गुजरता हुआ, फिर
वह शान्त हो गयी। उसने बिस्तर से अपना पर्स उठाया और गिलास उनके हाथ
में वापिस दे दिया।
"तुम बैठो, मैं चलती हूँ।"
"सुनो···" नित्ती भाई ने कहा।
वह उनके पास आयी, उनके चेहरे को हल्के से सहलाया; "जल्दी नहीं है
मैं बाहर बैठी हूँ।"
वह चली गयी, और वह चुप खड़े उस खाली जगह को देखने लगे, जहाँ
देर पहले वह खड़ी थी, और तब उन्हें देखते हुए एक अजीब-सा डर उसके भी
उठने लगा—वह उन्हें नहीं, बल्कि उसे देख रहा है, जो उन दोनों के बीच
चुका था और जिसे वह कभी नहीं जान पायेगा, न कभी उसे देख पायेगा
आनेवाला है क्योंकि जो कुछ होनेवाला है, वह पहले से ही कहीं घट चु
वह कहीं बीच में है, न इधर, न उधर, जहाँ इस क्षण नित्ती भाई खड़े हैं
कुछ अपने लिए कर सकते थे, न वह कुछ उनके लिए कर सकता था

खाली गिलास उठाया और बाहर चला आया···।

वे अब काफी जोर-शोर से बोल रहे थे; वह हिप्पी-सा दीखनेवाला लड़का छत पर लेटा हुआ कुछ गा रहा था और उसके पास बैठी लड़की बार-बार हँसने लगती थी; उन्हें कुछ पता नहीं है, उसने सोचा, उन्हें कभी कुछ पता नहीं होता।

कुछ देर बाद जब वह गिलास लेकर कमरे में लौटा, तो नित्ती भाई वहाँ नहीं थे। बाथरूम भी खाली पड़ा था। वह किचन में आया, सिंक का नल खोला और बहते पानी में भरे हुए गिलास को उँडेलने लगा।

ऊपर एक हवाई जहाज जा रहा था, साफ अँधेरे में एक जुगनू-सा रेंगता हुआ, नीचे की आवाज़ों से बेखबर, छतों के ऊपर एक चमकीली-सी घुर्र-घुर्र करता हुआ। उसके भीतर धूल-सी उड़ने लगी, न साफ, न धुँधली, सिर्फ एक जिद्दी-सी गर्द जो मन के भीतर एक तम्बू-सा तान लेती है। उसकी इच्छा हुई, वह उसके पीछे छिपकर खड़ा रहे, किसी को पता भी नहीं चलेगा, वह कहाँ है, कहाँ गया, कहाँ छिपा है। बिट्टी का कज़िन! उसे अपने पर गुस्सा और हँसी और शर्म-सी आने लगी। वह दर्शक-सा खड़ा रहता है और वे दीवार पर फिल्म की छायाओं-से एक क्षण ठिठककर गुम हो जाते हैं, अँधेरे में गायब हो जाते हैं, सिर्फ दीवार खड़ी रहती है, जिन पर न उनकी हँसी, न पीड़ा, न बीता हुआ समय, नाखूनों की एक खरोंच भी दिखायी नहीं देती, सिर्फ दो आँखें बची रहती हैं, तम्बू के बाहर झाँकती हुई, अकेले में उन्हें लीलती हुई जो अभी उसके पास थे, और अब जा रहे हैं···

वे सचमुच जा रहे थे। जीने के पास एक छोटी-सी भीड़ जमा हो गयी थी। किसी ने टैक्सी मँगवायी थी और उसका हार्न बराबर रात के सन्नाटे में चीख रहा था। मिसेज़ पन्त के कुत्ते जाग गये थे और वे भी बराबर हार्न का साथ दे रहे थे। छत के दूसरे कोने में, जहाँ सेमल का पेड़ था, बिट्टी कुछ कह रही थी, नित्ती भाई से, कुछ बहुत आग्रह के साथ, जैसे अक्सर वह बोलती थी, एक अजीब तात्कालिकता में, जैसे यह घड़ी कोई आखिरी घड़ी है किन्तु वह एक शब्द भी नहीं सुन पा रहा था; बीच छत पर काँच के गिलास, प्लेटें, बोतलें अकेले में चमक रहे थे।

वहीं उसे इरा दिखायी दी, मुँडेर के साथ सटी हुई, और उसे अजीब-सी खुशी हुई, वह अब भी वहाँ है; वह भागता हुआ रसोई में गया, दोनों खाली

ोले उठाये, जिन्हें वह अपने साथ लायी थी; वह हमेशा कोई-न-कोई चीज़
ोछे भूल जाती थी। वह मुंडेर के पास आया, धीरे-से इरा का हाथ खींचा, वह
एकदम चौंक गयी, मुड़कर उसे देखा।

"तुम इन्हें भूल गयी थीं।" उसने कहा और तब उसने देखा, उसका चेहरा
आँसुओं से भीगा है। सारा चेहरा।

उसने थैला उसके हाथ से लिया···एक छोटी-सी मुस्कराहट में होंठ खुल
गये, कुछ कहा नहीं, सिर्फ एक क्षण उसकी ओर देखा और फिर सीढ़ियाँ उतरने
लगी।

वह कमरे में लौट आया। कुछ देर बाद टैक्सी के जाने की आवाज़ सुनायी
दी, फिर सन्नाटा हो गया। सिर्फ हवा चलने से कभी-कभी छत पर पड़ी किसी
दरी या चटाई की सरसराहट सुनायी दे जाती। फिर सेमल का पेड़ हिलता
और उसकी छाँह बियर की बोतलों पर डोलने लगती।

बिट्टी का बिस्तर खाली पड़ा था।

वह लेट गया। वह रिकार्ड अब भी डिस्क में लगा था, जिसे कुछ देर पहले
इरा सुन रही थी। क्या नाम बताया था, उसने—हाहडन या हैंडल ?
पता नहीं कितनी देर बाद डैरी की मोटरसाइकिल की घुरघुराहट सुनायी
दी। वह जा रहे थे; चाँद सरकता हुआ मकबरे के गुम्बद पर आ अटका था। सारी
छत सूनी पड़ी थी; सिर्फ बिट्टी मुंडेर के पास खड़ी नीचे झाँक रही थी।

४

रात बीत गयी। दिन आया और फिर दूसरी रात। पैन्थर की आँखें खुलती—और मुंद जाती। वह दिन-भर मिस्टर हन्टर के साथ जंगलों में भटकता रहता। अँधेरा होते ही चाँद निकलता—एक-एक इंच बढ़ता हुआ—मार्च के मखमली आकाश पर एक चमकीले कीड़े-सा—छतों पर रेंगता हुआ—और जब आधी रात आँख खुलती, तो वही चाँद निजामुद्दीन के स्टेशन पर दिखायी देता, पीला और निष्पाप; वह अपने बिस्तर पर लौट आता। तकिये पर सिर टिकाता, तो कागज की चिप्पियाँ कराहने लगती, बिट्टी की स्लिपें, जिन्हें वह हर सुबह स्टूडियो जाने से पहले उसके सिरहाने रख देती, "मैं आज देर से लौटूंगी, तुम खाना खाकर सो जाना। मेरी इन्तजार मत करना।" कागज की हर चिप्पी पर उसका एक खाली दिन चिपका रहता—उसके अकेलेपन का कैलेंडर—जिसे वह अपने साथ इलाहाबाद ले जाना चाहता था।

लेकिन इलाहाबाद अभी दूर था, दूर की ट्रेनें आती थी और अलसाये-ऊँघते स्टेशन को एक पल झिझोड़कर आगे बढ जाती थी। वह अकेला छत पर खड़ा उन्हें देखता था, बिल्कुल अकेला नही, नीचे फाटक के आगे मिसेज पन्त भी खड़ी रहती थीं। हाथ में ट्रांजिस्टर, दोनो तरफ कुत्ते, उनके सफेद बाल हवा में उड़ते रहते। छत से वह बुढ़िया नही, गुड़िया-सी दिखायी देती थी, नीला लहँगा, शोख रेशमी दुपट्टा और छोटे-छोटे गुजराती स्लीपर। जब ट्रेन गुजर जाती तो वह सिर उठाती, जैसे उड़ते हुए धुएँ को अपनी निगाहो से नाप रही हों—और तब उनकी आँखें उस पर ठिठक जाती।

"हाऊ आर यू ?" वह जोर से चीखती। वह हमेशा अंग्रेजी मे चीखती थीं, अपने कुत्तो पर, नौकरो पर, किरायेदारो पर।

वह सिर हिलाता।

"मिस्टर ऐट होम ?"

वह दुबारा सिर हिलाता।

"आल ऐलोन ?"

वह एक हाथ में ट्रांज़िस्टर पकड़कर दूसरे हाथ को घुमाने लगतीं, जिसका मतलब होता, क्या बिल्कुल अकेले हो···? जैसे उन्हें विश्वास न हो कि उनकी तरह कोई दूसरा इतना अकेला हो सकता है। दोनों कुत्ते भी सिर उठाकर सन्देह से उसकी ओर देखने लगते···और वह जल्दी से मुड़ जाता; छत की दूसरी तरफ चला आता, जहाँ मिसेज़ पन्त की चील-दृष्टि नहीं पहुँच पाती थी।

वह घर का पिछवाड़ा था। मकबरे की दीवार से सटा हुआ—इतनी पास—कि वह उसे हाथ आगे बढ़ाकर छू सकता था। कभी-कभी छूता भी था। पुराने, पीले, गर्म पत्थर, जिनके बीच घास के तिनके निकले रहते। कभी-कभार कोई छिपकली दिखायी देती, जिसे देखकर लगता, वह भी मुग़लों के ज़माने की है, जब मकबरा बना था; वह बिना हिले-डुले मूर्च्छित-सी लेटी रहती, धूप के नशे में बेहोश, जैसे पत्थर पर चिपका कोई पत्थर हो—वह मुँह आगे करके हल्के-से फूँक मारता, और तब छिपकली अपना सिर उठाती, अपनी हरी आँखें उस पर गड़ा देती, धीरे-से फूत्कारती, आल एलोन ?

अँधेरा होते ही वह अपने कमरे में लौट आता; वह रिकार्ड-प्लेयर खोल देता। वह हमेशा एक ही रिकार्ड बजाया करता था, जिसे डैरी कभी कबाड़ी की दुकान से लाये थे। उसमें एक नीग्रो लड़की पथरायी आवाज में गाया करती थी; क्या गाती थी, उसे कुछ समझ में नहीं आता था, लेकिन उसकी आवाज एक आरे की तरह उसे चीरने लगती और वह अपने बिस्तर पर लेट जाता। कपड़ों की रस्सी भी खाली हवा में झूलती रहती। वह ऊँघने लगता। लड़की का स्वर फटा-फटा-सा बाहर रेंगने लगता जैसे बदली के दिन पीला-सा सूरज बाहर निकलता है, न रोशनी देता हुआ, न अँधेरा ढँकता हुआ; वह आँखें मूँद लेता, और रिकार्ड की सुई किसी सुर्ख, सूजे हुए फोड़े को कुरेदते हुए बूँद-बूँद दर्द बाहर निकालती, धीरे-धीरे उसके नींद के हाशिये पर आकर रुक जाती। बिस्तर के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती रहती, धीरे-से फुसफुसाती, आल एलोन ?

वह करवट बदल लेता—और फिर सब कुछ शान्त हो जाता; मिसेज़ पन्त के कुत्ते, हवा में डोलती रस्सी, नीग्रो लड़की की आवाज़; जब रात की आखिरी ट्रेन आती, तो वह नींद के परे होता, लेकिन रेल के पहिये बहुत दूर तक चलते रहते, नींद और पीड़ा की जुड़वाँ पटरियों पर घुरघुराते रहते।

फिर एक दिन चमत्कार हुआ।

वह बहुत देर तक सोता रहा था। जब आँख खुली, बिट्टी जा चुकी थी। वह मुँह धोने बाथरूम में गया, तो देखा, बेसिनी के शीशे पर कुछ अक्षर उसे ताक रहे थे : आज दुपहर मैं स्टूडियो में रहूँगी— तुम जरूर आ जाना।

वह कभी-कभी अपनी बिन्दी की रोली से इस तरह के सन्देश लिखा करती थी। वह कभी उन्हें देख लेता था, कभी नहीं···यह बिल्कुल किस्मत का खेल था। इन गोपनीय सन्देशों के पीछे न कोई नाम लिखा रहता था, न कोई तारीख। वे किसी दूसरे ग्रह के बुलावे जान पड़ते थे।

"तुम आओगे ?"

उसे मालूम था, वह उसे क्यों बुलाती थी। उसे डर था, वह ऊब रहा है। वह अकेला बुखार में घूम रहा है। उसे डर था, वह किसी ऐसे ही दिन अपना बोरिया-बिस्तर उठाकर इलाहाबाद की तरफ चल देगा। वह पागल थी। उसे नहीं मालूम था, वह कितना व्यस्त है। एक क्षण की छुट्टी नहीं। वह डायरी लिखता है; मिशनरी साहब की बन्दूक और बूटों की छाया में जंगलों को छानता है; बिट्टी के दोस्तों के बीच अपने पैन्थर के लहूलुहान पंजों को देखता है, जिसकी छाप आनेवाले दिनों पर छप-छप गड़ती जाती है···

नहीं, वह ऊब नहीं रहा; वह गुनगुना रहा था। उसने अपना सिर नल की धार के नीचे छोड़ दिया था।

सामने एक लम्बा कारीडोर था। वह दबे कदमों से आगे बढ़ा। दोनों तरफ बन्द दरवाजे थे। वह यहाँ अनेक बार आया था, हर बार स्टूडियो का दरवाजा भूल जाता था। शायद ही यहाँ कभी सूरज की किरण आती हो—दिन के समय में भी अँधेरा छाया रहता था। लम्बे-काले गलियारे में सब दरवाजे एक जैसे ही जान पड़ते थे।

उसे लगा, वह चलता जायेगा, गलियारे के अन्तिम छोर तक, जहाँ दुपहर की मलिन छाया रोशनदान से गिर रही थी। लेकिन बीच में फटाक से एक दरवाजा खुला, एक हाथ बाहर आया, झुकी हुई गर्दन से खँखियाती-सी आवाज बाहर आयी।

"कौन है ?" नेकीराम का स्वर था। उसे ढाँढस बँधा···जल्दी-से कहा, "मैं हूँ, क्या बिट्टी भीतर है ?"

"हिश" नेकीराम ने उसका हाथ पकड़कर भीतर खींच लिया। "धीरे बोलो, रिहर्सल चल रहा है।"

एक क्षण के लिए उसकी आँखें झिपझिपा गयीं। वह सचमुच एक तहखाना था—नेकीराम का क्यूबिकल—जहाँ वह रिहर्सल के दौरान बैठा रहा करता था। लेकिन वह थियेटर का गोदाम भी था, जिसमें दुनिया-भर की चीजें बिखरी रहा करती थीं, पुराने नाटकों की रंग-बिरंगी पोशाकें, कार्डबोर्ड के हैलमेट, मास्क, पेण्ट और पाउडर के डिब्बे—और एक लम्बा आदमकद शीशा— जिस पर धूल की मोटी परतें जमा होती गयी थीं।

नेकीराम ने उसका हाथ पकड़कर स्टूल पर बिठा दिया। यह उसकी दुनिया थी। पता नहीं, उसने कितने नाटक देखे थे। नेकीराम सबसे परिचित था। हर नाटक के बाद उसकी राय पूछी जाती थी। चपरासी से लेकर नाटकों में लाइट बदलने तक की जिम्मेवारियाँ उसे निभानी पड़ती थीं—जब नाटक में कोई विपत्ति या दुःख का सीन आता था, चाहे वह रिहर्सल में ही क्यों न हो—उससे बर्दाश्त नहीं होता था। वह उस मरीज की तरह आँखें मोड़ लेता था, जो इंजेक्शन की पीड़ा जानता हो, किन्तु सुई को नहीं देख सकता था। वह उस समय तक आँखें मोड़े रहता था, जब तक सीन खत्म नहीं हो जाता था और जब दुबारा आँखें स्टेज पर उठाता, तो गहरे आश्चर्य में, मानो सोच रहा हो, इतने बड़े भूकम्प के बाद कैसे हर चीज ज्यों-की-त्यों कायम है।

पहले दिन उसे देखते ही उसने पूछा था, "तुम बिटिया के भाई हो?"

"नहीं, मैं उसका कज़िन हूँ। मैं इलाहाबाद से आया हूँ।" वह एक साँस में कह गया।

"इलाहाबाद से? वहाँ तो रामलीला देखते होगे?"

वह हँसने लगा।

"यहाँ कबसे हो?"

"एक महीने से।"

वह कुछ देर गम्भीर, गहरी आँखों से उसे देखता रहा।

"दिल्ली का चिड़ियाघर देखा है?"

"नहीं···क्यों?" उसने आश्चर्य से नेकीराम को देखा।

"फिर तुम्हें यह नाटक कुछ समझ में नहीं आनेवाला।" नेकीराम ने सिर हिलाया। "कभी वक्त मिले, तो जाकर देखना। वहाँ एक चीता है, दिन-रात पिंजरे के चक्कर काटता है।"

उसने नेकीराम को ध्यान से देखा; कहीं वह ठिठोली तो नहीं कर रहा है? भला चीते का नाटक से क्या रिश्ता? किन्तु उसकी बूढ़ी, गमगीन आँखों को देखकर वह चुप्पी साध गया। अगर कुमाऊँ जंगलों का पैन्थर उसके सपनों में आ सकता है, तो जू का चीता क्या बिट्टी के नाटक में नहीं आ सकता?

उस दिन ज्यादा बात नहीं हुई—नेकीराम ने उसे आडिटोरियम की पिछली सीट पर बिठा दिया था। छोटा-सा हाल, धुंधली, पीली रोशनी में भीगा स्टेज—स्टेज भी नहीं—कुर्सियों के आगे एक खाली-सा प्लेटफार्म—जहाँ बिट्टी और उसके दोस्त आते थे, बातें करते थे, सिगरेटें पीते थे। वह काफी निराश हुआ था। उसे लगा, वह कोई स्कूल का क्लास-रूम देख रहा है, थियेटर नहीं। उसके मस्तिष्क में थियेटर की कल्पना कुछ दूसरी थी—जगमगाती बत्तियाँ, चमचमाता स्टेज, तड़क-भड़क पोशाकें पहने ऐक्टर—लेकिन यहाँ किस्सा ही कुछ निराला था। बिट्टी और उसके दोस्त उन्हीं मैले-पुराने कपड़ों में स्टेज पर घूम रहे थे, जैसे वह उन्हें हर रोज़ देखता था। डैरी के हाथ में एक नोटबुक थी। वह एक लम्बे, हृष्ट-पुष्ट युवक को कुछ समझा रहे थे। बिट्टी स्टेज के एक कोने में कुछ अनजाने *लोगों के बीच घिरी बैठी थी। बीच-बीच में कोई चिल्लाने लगता, "नेकीराम जी,* एक कप चाय, नेकीरामजी, पानी।" सहसा पाताल से नेकीराम प्रकट हो जाता, चाय-पानी देकर दुबारा अपने क्यूबिकल में गायब हो जाता।

किन्तु आज वह नेकीराम के क्यूबिकल में बैठा था। यहाँ उसे कोई नहीं देख सकता था, जबकि वह दरवाजे के चौड़े सुराख से सब कुछ देख सकता था।

एक नंगा स्टेज और छत के नीचे डोलता हुआ बिजली का बल्ब, जिसकी रोशनी कोने में बैठे एक आदमी पर गिर रही थी। वह उसका चेहरा नहीं देख सकता था—लेकिन उसकी आवाज़ सुनायी दे रही थी। वह सिर मोड़कर कोने में बैठी एक लड़की से कुछ कह रहा था। वह लड़की एक कुर्सी पर बैठी थी, सिगरेट पी रही थी, आदमी की बातों से बेखबर, बिल्कुल बेखबर नहीं, क्योंकि उसकी आँखें बार-बार आडिटोरियम की तरफ उठ जाती थीं—और तब अचानक बत्ती का प्रकाश तेज हो गया और वह एक कौंध में पहचान गया—सिगरेट पीती हुई लड़की कोई और नहीं, इरा थी।

सहसा वह आदमी पीछे मुड़ा और इरा भी कुर्सी से उठ खड़ी हुई। आडिटोरियम की सीढ़ियों से कोई भागता हुआ नीचे आ रहा था, बीच स्टेज पर, रोशनी के दायरे में एक हाँफती हुई औरत, जिसने बरसाती पहन रखी थी, बाल माथे पर बिखर आये थे—सफेद बाल—पानी में लिथड़े हुए—और तब उसका मुँह सूख

गया, उसने नेकीराम का हाथ कस के पकड़ लिया। एकाएक उसे विश्वास नहीं हो सका कि बारिश में भीगी, हाँफती हुई वह अधेड़ महिला और कोई नहीं—बिट्टी थी।

वह आगे सरक आया। दरवाजे के सुराख पर अपनी आँख गड़ा दी। वह सचमुच बिट्टी थी, किन्तु उसकी कजिन नहीं, बरसाती में वह जिस लड़की को दिन-रात देखता था, वह लड़की नहीं। स्टेज की नंगी, तेज रोशनी में उसे लगा जैसे कोई दूसरी आत्मा बिट्टी की पुरानी देह से बाहर झाँक रही है, हालाँकि चेहरा वही था, कपड़े भी वही थे, बरसाती के नीचे सलेटी रंग का खादी का कुर्ता, कुर्ते का पहला बटन खुला था, जिसके ऊपर उसकी नंगी, तपी हुई गर्दन स्टेज के उजाले में बहुत निरीह-सी दिखायी देती थी।

बिट्टी उस आदमी की तरफ आगे बढ़ी, जो स्टेज के कोने में खड़ा था, किन्तु इस बीच सिगरेट पीती हुई लड़की ने सिगरेट फेंक दी, अपनी सैण्डिल के नीचे कुचल दी (क्या वह सचमुच इरा थी?) और भागते हुए बिट्टी के रास्ते पर आ खड़ी हुई। उसका हाथ पकड़ लिया, घुटनों पर झुकते हुए कुछ कहा, मानो वह उससे कोई भीख माँग रही हो; किन्तु बिट्टी ने उसे देखा भी नहीं, जैसे वह सोते हुए चल रही हो, असीम, नीली धुन्ध में; उसने इरा को धक्का देकर हटा दिया और कोने में खड़े आदमी के सामने चली आयी। एक क्षण उसकी ओर देखा, जैसे वह अचानक जाग गयी हो, सिर्फ एक क्षण के लिए, किन्तु वह क्षण भी कितना लम्बा था, उन खुली आँखों में न जाने कितना गुस्सा था—कितना पछतावा, कितना आक्रोश और वितृष्णा उनमें छिपी थी। आदमी ने अनायास हाथ आगे बढ़ाया, बिट्टी को रोकने के लिए, या शायद अपने को बचाने के लिए। किन्तु बिट्टी ने झटककर उसके दोनों कन्धे पकड़ लिये, उसे हिलाने लगी। और वह आदमी जड़वत-सा होकर डोलने लगा—कभी आगे, कभी पीछे—और तब उसने वह आवाज़ सुनी, साफ, तीखी, बिट्टी की आवाज, साफ और चमकीली, चाकू की चमकीली धार की तरह किसी भीतर के मौन और अँधेरे को काटती हुई, स्वयं उसकी अपनी देह को काटती हुई और वह पसीने में लथपथ ठिठुरने लगा, बार-बार अपने को समझाने लगा कि यह सिर्फ ड्रामा है, असली ड्रामा भी नहीं, सिर्फ एक खाली दुपहर का रिहर्सल, जिसका असली दुनिया से कोई लेना-देना नहीं, लेकिन मालूम होना एक बात है, आदमी के कन्धे पर झूलते हुए बिट्टी के बदहवास चेहरे को देखना दूसरी बात—वह एक ऐसी जगह चली आयी थी, जहाँ इलाहाबाद का घर था, वह बीच कमरे में खड़ी थी, चाचा गुमसुम-से खड़े उसे ताक रहे थे,

चाची कोने में बैठी रो रही थी और उसे आश्चर्य हुआ कि बिट्टी चाची के आँसुओं को नहीं, अपने पिता के सुन्न चेहरे को देख रही थी, जैसे उनसे क्षमा माँग रही हो, फिर उसने अपना सूटकेस उठाया और बाहर चली आयी, घर के बाहर, स्टेज पर, पीली रोशनी के दायरे में, जहाँ वह एक अजनबी आदमी के कन्धों पर सिर टिकाये चीख रही थी, बाहर और भीतर की देहरी पर सिर पटकती हुई, एक ऐसी दुनिया में, जहाँ दुपहर हमेशा दुपहर रहती है, जो न असली है, न नकली, इसीलिए इतनी भयानक है, क्योंकि वहाँ किसी सीन को नहीं टाला जा सकता, किसी को नहीं बचाया जा सकता···

लेकिन वह क्षण टिका नहीं—डैरी स्टेज पर आये और सब ठिठक गये—ठिठका हुआ समय बहने लगा। वे सब डैरी के इर्द-गिर्द जमा हो गये जैसे मैदान में खिलाड़ी ट्रेनर के आगे-पीछे खड़े हो जाते है, उत्सुक और उत्तेजित, क्या कोई चीज छूट तो नहीं गयी ? क्या वे उसे पकड़ने में सफल हो पाये थे जो मुद्दत पहले किसी लेखक ने अपने अकेले कमरे में खोजा था ?

डैरी कुछ बोल रहे थे, समझा रहे थे, किन्तु अब वह नहीं सुन रहा था। उसकी दिलचस्पी सहसा खत्म हो गयी थी। स्टेज पर खड़े लोग अब हास्यास्पद-से दिखायी दे रहे थे, जैसे उनके भीतर कोई कीमती आलोक झर गया था, मुरझा गया था, उन्हें नंगे ठूँठ की तरह अकेला छोड़ गया था। उसे विश्वास नहीं हो सका कि स्टेज पर खड़ी, इरा वही लड़की थी, जो अभी कुछ देर पहले फटी-फटी आँखों से बिट्टी को देख रही थी—और वह लड़की कहाँ थी, जो बारिश में भीगते हुए आयी थी, अँधेरे में चीख रही थी ?

पता नहीं, वे लोग कौन थे, कहाँ से आये थे, कहाँ गायब हो गये थे ?

"सो रहे हो क्या ?" नेकीराम ने उसके कन्धों को झिंझोड़ा।

वह चौंक गया, खिसियानी मुस्कराहट में उस बूढ़े आदमी को देखा, जो पाताल के जिन-जैसा बैठा था।

"क्या खत्म हो गया ?" उसने पूछा।

"नाटक कभी खत्म होता है ? आज वे इसी सीन को दुहरायेंगे।" उसने अनन्त गहराई में जाकर जम्हुआई ली।

नेकीराम जाने के लिए खड़ा हो गया था। वह उसके उठने की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन वह नहीं उठा। वह उस जादू को नहीं खत्म होने देना चाहता था, जो उसने अभी अपनी आँखों से देखा था। लोग कैसे बदल जाते हैं ? अचानक उसके मन में एक पुरानी स्मृति कौंध गयी—इलाहाबाद में, जब वह [illegible] के

साथ नुमायश देखने गया था। कितने साल गुजर गये! उसने कभी नहीं सोचा था, स्टूडियो के उस क्यूविकल में अतीत का एक टुकड़ा सावुत-का-सावुत वाहर निकल आयेगा।

मैं उसे कभी अपनी डायरी में लिखूंगा, उसने सोचा—और तव क्यूविकल का दरवाज़ा खुला।

शीशे में विट्टी की छाया झाँक रही थी।

मैं अव भी उसे देख सकता हूँ। उसने हाथ-मुँह धो लिया था। वरसाती उतार दी थी। पसीने में विखरे वाल अव एक ढीले जूड़े में सिमट आये थे और माथा—वह साफ और ऊँचा दिखायी दे रहा था।

यह सव मैंने क्यूविकल के शीशे में देखा था। वह मेरे पास नहीं आयी, मैं ही उठकर उसके पास चला आया।

वह मुस्करा रही थी।

"कैसा लगा?"

मेरे पास पूछने को ढेरों सवाल थे—लेकिन उस समय मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "मैं तुम्हें पहचान भी नहीं सका।"

"वस, इतना ही?"

"क्या सिगरेट पीती हुई लड़की इरा थी?"

"और कौन होगा?" उसने अपना चमड़े का वैग उठा लिया, "जल्दी चले आओ, वे वाहर खड़े हैं।"

हम वाहर आये, लेकिन गलियारे में कोई दिखायी नहीं दिया—स्टूडियो के भीतर से आवाजें सुनायी दे रही थीं। विट्टी ने कुछ दूर चलकर एक दूसरा दरवाजा खोला। वह स्टेज का पिछवाड़ा था। दोनों तरफ छोटे-छोटे केविन थे, नेकीराम फर्श पर झाड़ू लगा रहा था। मुझे देखकर उसने मुस्कराते हुए आँख दवायी—फिर विट्टी से कहा कि वे सव तीन नम्वर में हैं।

मुझे लगा, मैं किसी भूल-भुलैया में आ फँसा हूँ। आधे-अँधेरे कमरे में एक लम्वा-सा लड़का अपने सूटकेस में कुछ कपड़े ठूँस रहा था, विट्टी से दो-चार वातें करके वह फिर अपने काम में जुट गया—और तव मुझे अचानक याद आया कि यह वही लड़का है, जिसके कन्धे को पकड़कर विट्टी चीख-चिल्ला रही थी। वह हिप्पी-सा दीखनेवाला लड़का, जिसे उस रात वरसाती की छत पर देखा था,

मुझे हैरानी हुई, उम्र मे वह कितना छोटा था, जबकि स्टेज पर वह कोई अधेड़ उम्र का बिगड़ा हुआ अफसर दिखायी देता था।

हाल के कोने में डैरी दिखायी दिये—वह टेपरिकार्डर के साथ जूझ रहे थे। पास ही एक थैला पड़ा था, जिसमें पता नही, कितने कागज-पत्तर ठुंसे थे। कुछ देर तक उन्हें पता नही चला कि हम उनके सिर के ऊपर खड़े हैं।

"तुम अभी यहाँ हो ?" बिट्टी ने धीरे-से उनके बालों को खींचा। उन्होंने अचकचाकर सिर उठाया।

"मैं इसे साथ ले जा रहा हूँ—" उन्होंने टेप-रिकार्डर की तरफ इशारा किया।

"घर ले जाओगे ?"

"नही, इसे नित्ती भाई के घर छोड़ देंगे—कल यहाँ आते हुए ले लेंगे।" इस बार उनकी आँखें मुझ पर पड गयी, "क्या हाल है ?"

उन्होंने हँसकर हाथ आगे बढाया—वह हमेशा मुझसे हाथ मिलाते थे, जो शुरू में मुझे बहुत अजीब लगता था, लेकिन चूंकि वह मेरे साथ थोड़ा मजाक भी करते थे, मुझे वह ज्यादा खलता नही था।

"रिहर्सल देखा ?" वह फिर टेप-रिकार्डर पर झुक गये थे।

"हाँ," मैंने कहा।

"जानते हो, यह नाटक किसने लिखा है ?"

"स्ट्रिनबर्ग।"

"गुड," उन्होंने सिर ऊपर उठाया—आधी रोशनी मे उनकी दाढी चमक रही थी। "मालूम है, वह कौन थे ? पागल—एब्सेल्यूटली मैड !"

"डैरी !" बिट्टी ने कहा।

"क्या नही थे ?" डैरी ने गम्भीर जिज्ञासा से बिट्टी की ओर देखा।

"तुमसे ज्यादा नही।" बिट्टी ने कहा। "इरा कहाँ है ?"

"नित्ती भाई के घर—जरा देखो।"

डैरी फर्श पर ही बैठ गये—थैले से कुछ कागज निकाले और बिट्टी को दे दिये।

"मैंने कल रात बनाये थे।"

बिट्टी कागजों को पलटने लगी—मैं भी देखने लगा। पेंसिल मे ड्राइंग्स खींची गयी थी, हर ड्राइंग के नीचे पहला सीन, दूसरा सीन, लिखा था।

"बहुत काम करते हो ?" बिट्टी ने डैरी को देखा—उसमे अजीब-सा स्नेह

और लगाव भरा था।

डैरी अपनी दाढ़ी खुजलाने लगे।

"कल रात नींद नहीं आ रही थी—मैंने सोचा, चलो, सेट्स के बारे में ही कुछ सोचा जाये।"

विट्टी एक-एक करके पेंसिल के स्केच देखने लगी; कभी-कभी डैरी भी कागजों पर झुक जाते, उससे पूछते, कौन-सा दरवाजा कहाँ रखना ठीक होगा, दो कुर्सियों के बीच कितनी स्पेस छोड़नी होगी, विट्टी कहीं आपत्ति करती या सलाह देती तो वह चुपचाप सुनते रहते, पेंसिल निकालकर कुछ लिखने लगते। मुझे लगा, वे मुझे भूल-सा गये हैं, जैसे मैं वहाँ हूँ ही नहीं; फिर मुझे महसूस हुआ कि जैसे वे एक-दूसरे को भी भूल गये हैं। नहीं, भूले उतना नहीं, जितना खो गये हैं, असली का खोना नहीं, बल्कि ऐसा, जब हमें मालूम हो दूसरा कहाँ छिपा है और हम खोकर भी दूसरे के साथ जुड़े रहते हैं (मैं इस नोटबुक में उसे नहीं समझा सकता)। विट्टी के बालों की लट कभी ढीली होकर डैरी के गालों को छूने लगती, और वह उसे छूने देते, ड्राइंग्स पर कुछ समझाती हुई डैरी की अँगुलियाँ कागज पर थमे विट्टी के हाथों पर ठिठक जातीं और—विट्टी उन्हें ठिठके रहने देती, यह नहीं कि इसका उन्हें पता नहीं था, किन्तु इस पता होने का सुख—यदि उसे सुख कहा जा सके—ऊपर नहीं आता था, बातों की रौ के नीचे चला जाता था, उसे साफ और चमकीला बना देता था—और जब वे कागजों से अपनी आँखें उठाकर एक-दूसरे को देखते, तो सुख नहीं, इस चमक को देखते थे, जिसमें एक अजीब-सी उदासी और विस्मय छिपा रहा करता था।

उन्हें खयाल आया, मैं भी वहाँ हूँ। और तभी शायद यह खयाल भी आया—कि वे एक-दूसरे के साथ थे। वे अलग हो गये, हालाँकि वे एक ही जगह बैठे थे।

विट्टी ने कागजों का पैड डैरी को वापिस कर दिया :

"क्या इन्हें नित्ती भाई को दिखाया था ?"

"आज वहाँ चलेंगे, तो दिखाऊँगा···मुझे मालूम है, वे इन्हें फाड़कर फेंक देंगे।" डैरी ने कहा।

विट्टी हँसने लगी—धीरे-से अपना हाथ डैरी की बाँह पर रख दिया, "क्या वे अब भी तुमसे नाराज हैं ?"

"मुझसे नहीं—स्ट्रिनबर्ग से।"

डैरी ने ऐनक उतारी और उसके शीशे अपनी कमीज के स्लीव से साफ करने लगे। वह कुछ सोचने लगे थे। एक बोझिल-सी परेशानी उनके माथे पर

सिकुड़ आयी थी।

"बिट्टी—क्या तुम इधर नित्ती भाई से मिली हो ?"

"नहीं—क्यों ?"

"वह पन्द्रह दिन से अपने फ्लैट में हैं—बिल्कुल बाहर नहीं निकलते।"

"घर नहीं जाते ?"

"लगता नहीं, पिछले कई दिनों से वहाँ से गुजरता हूँ, तो उनकी बत्ती जलती दिखायी देती है।"

बिट्टी कुछ सोचने लगी और—मुझे याद आया, शुरू के दिनों में जब हम भटकते हुए थक जाते तब अचानक बिट्टी कहती, चलो, नित्ती भाई के पास चलते हैं। तीन मंजिल सीढ़ियाँ चढ़कर उनका फ्लैट था, जो उनके आफिस के काम में भी आता था। वह मजाक में उसे अपनी वर्कशाप कहते थे। दिन में दो-तीन आर्कीटैक्ट मित्रों के साथ वहाँ काम करते थे, लेकिन जब वे चले जाते, तो यही वर्कशाप उनके 'घर' में बदल जाती, जहाँ वह देर शाम तक काम करते रहते थे। पहले दिन जब मैं उनके फ्लैट से लौटा था, तो बिट्टी से यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ था कि यह नित्ती भाई का असली घर नहीं है—वह माल रोड में रहते थे, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ—यहाँ सिर्फ अपने काम के लिए आते थे।

मुझे सिर्फ इतना मालूम था—लेकिन उस दुपहर स्टूडियो में मुझे लगा, जैसे मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। कुछ देर तक बिट्टी खाली आँखों से डैरी को देखती रही—और डैरी अपने टेप-रिकार्डर, टेप्स, रिकार्डों और कागजों को समेटने में जुटे रहे। मुझे लगा, वह किसी कारण से अपने को बिट्टी की नजरों से बचा रहे हों। लेकिन क्यों ? वह क्या है, जिसे वह छिपा रहे हैं ? क्या अपने दोस्तों के दुख एक हद के बाद शर्मनाक-से बन जाते हैं, जिन्हें छिपाना ही बेहतर है ?

"इरा ने तुमसे कुछ कहा था ?" बिट्टी ने कहा।

"कब ?" डैरी ने आँखें ऊपर उठायीं।

"उसने तुम्हें अपने होस्टल में बुलाया था।"

"कुछ नहीं।" डैरी फिर अपने काम में जुट गये। "उसे [illegible] है—कहती थी, इस नाटक के बाद वह इंग्लैण्ड जाना चाहती है।"

"तुमने क्या कहा ?"

डैरी ने सब चीजें समेटकर कोने में रख दीं—सिर्फ अपना टेप-रिकार्डर उठाकर खड़े हो गये।

"चलो…?" उसने बिट्टी को देखा।

विट्टी बैठी रही।

"तुमने क्या कहा ?"

"मैंने कहा—यह सबसे बड़ी बेवकूफी होगी—तुम नहीं सोचती ?"

इस बार उन्होंने कुछ विश्वास के साथ विट्टी को देखा, "सुनो, तुम्हें उसे कुछ समझाना चाहिए। इस तरह वे लोग नहीं चल सकते।"

वे लोग; इरा और नित्ती भाई ? विट्टी की आँखें ऊपर उठीं, एक अजीब हताशा में। सब चल सकते हैं; चल रहे हैं; न तुम उन्हें रोक सकते हो, न वापिस बुला सकते हो। वापिस, अपने पास; उसे कोई खयाल आया और वह मुस्कराने लगी, "डैरी, सब लोग तुम्हारे जैसे नहीं होते।" उसने कहा।

"मैं कैसा हूँ ?" डैरी ने विट्टी को देखा।

"जैसे भी हो, तुमने अपने को पा लिया है। सब लोग तुम्हारे जैसे सौभाग्यवान नहीं होते।"

पता नहीं, विट्टी के स्वर में व्यंग्य था या सिर्फ एक कोरा वक्तव्य, लेकिन डैरी के हाथ टेप-रिकार्डर पर ठिठक गये। उन्होंने सिर उठाकर विट्टी को देखा, "मैंने क्या पा लिया है ?"

"तुम सोचते हो डैरी, दूसरे लोगों की तकलीफें झूठी हैं।" विट्टी अजीब ढंग से मुस्करा रही थी, "सिर्फ तुम्हारा काम असली है।"

"तुम मुझसे तकलीफों की बात मत करो," डैरी ने कहा, "बरसाती में रहकर तकलीफें पता नहीं चलतीं।"

"नहीं, सरकारी बंगले में रहकर पता चलती हैं..." विट्टी का स्वर एकदम बदल गया, "लेकिन तुम बिहार के गाँवों में भी घूमे हो...वहाँ लोगों के बीच रहे हो; अब तुम पर कोई अँगुली नहीं उठा सकता।"

डैरी ने विट्टी को देखा, जैसे वह कोई अजनबी लड़की हो, जिसके बारे में उन्हें कुछ भी नहीं मालूम। और विट्टी ? वह अजीब हैरानी से डैरी को देख रही थी, क्या वे इतनी नीची सतह पर उतरकर एक दूसरे को यातना दे सकते हैं लेकिन अभी कुछ देर पहले वे एक-दूसरे के साथ बैठे थे, विट्टी उनके डिजाइ देख रही थी और उनके हाथ विट्टी को छू रहे थे...इन दस मिनिट में क्या हुआ कि अचानक दोनों एक-दूसरे से इतना दूर छिटक गये हैं, कि सारी दुनिया उ बीच से निकल सकती है; हम दूसरों की तकलीफों के बारे में क्या इसलिए ल हैं, क्योंकि अपने सुख का कहीं पता नहीं होता ?

विट्टी अपना बैग लेकर उठ खड़ी हुई।

"चलो," उसने मुझसे कहा, डैरी भी उठ खड़े हुए। लेकिन एक क्षण के लिए दोनों ठिठके रहे, जैसे कोई चीज पीछे छूट गयी है, स्टूडियो के बासी, बोझिल धुंधलके में; कोई घाव, कोई खून की खरोंच, जिसकी पीड़ा बरसों बाद सिर उठाती है, माफी-सी माँगती हुई, जबकि उसका कोई फायदा नहीं था। बीती हुई स्मृति आनेवाली पीड़ा को कभी माफ नहीं करती, यह उसने बरसों बाद जाना था।

इसीलिए माँ ने यह नोटबुक मुझे दी थी। कहती थी, देखते हुए हम जो भूल जाते हैं, लिखते हुए वह एक बार फिर याद आ जाता है; लेकिन 'याद करना' देखना नहीं है; वह अलग करना है, जैसे अब नोटबुक पर मैं बिट्टी की हैरानी और डैरी की चौंकी-सी आँखें देख रहा हूँ, और वह स्मृति सफेद पन्ने पर अचानक सबसे अलग हो गयी है, वह अपने में अकेली है, समूची दुनिया से अलग, कागज पर चिपकी हुई एक तितली की तरह, लेकिन वह मरी हुई तितली है, उड़ते हुए रंग की निर्जीव लोथ। यह एक तरह का सौदा है···देखने, मरने और याद करने के बीच। हम स्मृति में उसे पकड़ते हैं, जो मृत और मुरदा है; जब वह जीवित थी, हम उसे ओझल कर देते हैं, हाथ से निकल जाने देते हैं, भूल जाते हैं।

मैं भी उसे बहुत जल्दी भूल गया। हम स्टूडियो से बाहर आये और टैक्सी में बैठ गये। डैरी जल्दी में थे —वह अपना टेप-रिकार्डर नित्ती भाई के कमरे में रखकर घर लौटना चाहते थे। बिट्टी खिड़की से बाहर देख रही थी।

बाहर तोते उड़ रहे थे, शाम के धुंधलके में चक्कर काट रहे थे। पेड़ों की फुनगियाँ आखिरी धूप में सुलग रही थी, समूचा कनाट प्लेस एक चमकीला टापू-सा दिखायी देता था।

यह मुझे याद है। इसके बाद सिर्फ अँधेरा जीना याद आता है। सीलन और घरेलू गन्धों की बासी हवा में साँस लेते हुए हम ऊपर आये थे। डैरी ने दरवाजा खटखटाया, लेकिन बहुत देर तक भीतर से कोई आवाज सुनायी नहीं दी।

"शायद दूसरे कमरे में हैं।" डैरी ने बिट्टी से कहा।

"बत्ती तो जल रही है।"

तभी भीतर पैरों की आहट सुनायी दी। दरवाजा खुला, तो नित्ती भाई नहीं, इरा खड़ी थी।

मैं एकटक उसे देखता रहा। उसने कपड़े बदल लिये थे और अब साड़ी पहने

थी। चेहरा बहुत उजला दीख रहा था। थियेटर में जो धूल-मैल चेहरे पर दिखायी दी थी, अब वह कहीं न थी।

"भीतर आओ।" उसने कहा।

"नहीं—मुझे जाना है; मैं सिर्फ यह छोड़ने आया था।" डैरी ने टेप-रिकार्डर और रिकार्डों का गट्ठर भीतर रख दिया। अपने थैले से पैड निकालकर इरा को दे दिया।

"ये नित्ती भाई को दे देना।"

"क्या है?" इरा ने पूछा।

"वह समझ जायेंगे।" डैरी ने कुछ परेशानी में कहा, "मैं अब चलता हूँ।"

वह पीछे मुड़े और विट्टी को देखा—उसका आधा चेहरा अब भी जीने के अँधेरे में छिपा था। वह शायद कुछ कहना चाहते थे, लेकिन बीच में ही रुक गये और फिर सीढ़ियाँ उतरने लगे।

"क्या बात है?" इरा ने विट्टी को देखा।

"कुछ नहीं···नित्ती भाई कहाँ है?"

"चलो।" इरा ने मेरे कन्धे को छुआ," "अपना स्वेटर उतार दो—यहाँ बहुत गर्मी है।"

वही कमरा था, जिसमें मैं और विट्टी कई बार आये थे। वे सर्दियों के दिन थे जब विट्टी के रिहर्सल शुरू नहीं हुए थे और हम दिल्ली की धूल छानते थे और जब थक जाते थे तो नित्ती भाई के फ्लैट के नीचे आकर ऊपर झाँकते थे और अगर उनके कमरे की बत्ती जल रही होती थी, तो कुछ मिनट उनके कमरे में साँस लेने के लिए रुक जाते थे।

यही वह कमरा है, जहाँ मैं अब खड़ा था। दीवार पर सिर्फ एक तस्वीर थी—आइंस्टाइन की—जिनकी सफेद दाढ़ी और चमकती आँखें हर मेहमान पर जम जातीं, मानो पूछ रही हों—किस प्लेनेट के प्राणी हो? तस्वीर के नीचे फायर-प्लेस थी, जहाँ सर्दियों में नित्ती भाई आग जलाते थे—किन्तु अब वह खाली और ठण्डी पड़ी थी। चारों तरफ ड्राइंग-बोर्ड थे, किताबों की एक रैक—और कोने में खिड़की के पास एक मेज थी—जिसके परे, अगर मौसम साफ हो, कनाट प्लेस की छतें दिखायी देती थीं।

किन्तु, अब वहाँ अँधेरा था—सिर्फ मकानों की बत्तियाँ झिलमिला रही थीं।

"तुम यहाँ खड़े हो? चलो, मैंने चाय बनायी है।"

नित्ती भाई मेरे पीछे खड़े थे। वह इतने लम्बे थे, कि मुझे सिर उठाकर उन्हें

देखना पडता था। उन्होंने वही हाफ पैंट पहन रखी थी—जिसे देखकर मुझे हमेशा हैरानी होती थी—वह स्काउट-मास्टर-से दिखायी देते थे।

"अब आप यहाँ काम नहीं करते ?"

मैंने खाली मेज की तरफ इशारा किया।

"यहाँ नीचे से बहुत शोर आता है।" उन्होंने मेरी ओर देखा, दाढ़ी बढ़ी थी, वैसे नहीं, जिसे बढ़ाया जाता है, जैसे डैरी की दाढ़ी थी, बल्कि जिसे देखकर लगता था, जैसे वह शेव करना भूल गये हों, नीले गालों पर छोटे-छोटे सफेद उगे हुए बाल। मैंने कभी किसी आदमी को अपने प्रति इतना लापरवाह नहीं देखा था—मानो उनका अपने शरीर से कोई रिश्ता न हो।

किन्तु आज जो चीज मुझे सबसे अच्छी तरह याद रह गयी है, वह उनकी आवाज थी—पतली और तीखी—जो पहले क्षणों में काफी चुभती थी, पर यदि उसे देर तक सुनते रहो, तो उसके कोने झर जाते थे और वह सिकुड़कर एक लौ की तरह मेरे भीतर अपना रास्ता टटोल लेती थी।

नित्ती भाई ने मेरा हाथ पकड़ा और हम दूसरे कमरे में चले आये।

वह कमरा पहले से कहीं छोटा था—और खाली भी। वहाँ नित्ती भाई की एक काऊच थी—और उससे सटा हुआ ऊँचा डेस्क। पीछे एक बड़ा मेज था, जहाँ एक हाट-प्लेट, कुछ बर्तन और चाय-काफी का सामान रखा रहता था। डेस्क के पास ही एक तिपाई थी, जिस पर टेबुल-लैम्प जल रहा था।

क्या उस दिन मुझे मालूम था, कि एक बार फिर मैं इस कमरे में आऊँगा, ऐसा ही साधारण-सा दिन होगा, ऐसी ही शान्त घड़ी, लेकिन सब कुछ एक काले दुःस्वप्न की तरह दुहराता हुआ लौटेगा ?

क्या हम उसे याद कर सकते हैं, जो अभी हुआ नहीं है, लेकिन होनेवाला है ? एक दिन जो होगा—होनी को ? मुझे मालूम है, यह असम्भव है—लेकिन उस शाम जब मैं नित्ती भाई के साथ उनके कमरे में आया तो मैं एक क्षण ठिठक गया—मुझे एक पागल-सा खयाल आया, यह मैंने कभी पहले देखा है और यह फिर कभी होगा—हूबहू ऐसा जैसा मैं देख रहा हूँ—चाय बनाती हुई इरा और काऊच पर बैठी विट्टी—डेस्क पर पिन किया हुआ ड्राइंग-पेपर, खिड़की से भीतर आती हुई मार्च की हवा; जब नित्ती भाई भीतर आये तो इरा कुछ कहते हुए रुक गयी और विट्टी···उसने आँखें ऊपर उठायी—एक फफकती-सी जिज्ञासा में··· लेकिन नित्ती भाई ने आँखें मोड़ ली, कुछ नहीं बोले, काऊच पर बैठ गये और मुझे अपने पास बिठा लिया—थोड़ा-सा मुस्कराये।

सका मन लग गया ?" उन्होंने विट्टी से पूछा, "अब तो इलाहाबाद जाने
द नहीं करता ?"
इरा पीछे मुड़ी, मेरी तरफ देखा।
"याद है, पहले दिन कैसे रोया था ?"
"रोया कहाँ था ?" मैंने कहा।
इरा चाय के प्याले हमारे पास ले आयी। "तुम स्टेशन से ही वापिस इलाहा-
द लौट जाना चाहते थे।"
मैं हँस दिया—हालाँकि जब मैं प्लेटफार्म पर खड़ा था, तो सचमुच रोना आ.
रहा था। दिल्ली का स्टेशन—सुबह की धुन्ध और बारिश में कुछ भी दिखायी नहीं
देता था। मैं भीड़ में विट्टी को ढूंढ़ रहा था, लेकिन जिस लड़की ने मेरा हाथ
पकड़ा, वह बिल्कुल अजनबी थी। वह मेरा हाथ पकड़कर विट्टी के पास ले गयी,
"देखो, यही तो तुम्हारा कजिन नहीं है ?" तब पहली बार विट्टी ने मेरा परिचय
इरा से कराया था। किन्तु तभी मैंने देखा, एक दूसरा अजनबी आदमी मेरा सूटकेस
उठाकर ले जा रहा है। मैं उसके पीछे भागनेवाला ही था कि विट्टी ने हँसते हुए
अपने पास खींच लिया, "डरो नहीं, यह मेरे दोस्त हैं।" और मैं उन्हें देखने लगा,
जो मुझे चोर-जैसे मालूम हुए थे, रूखे बाल, खाकी हाफ-पैंट, साधुओं-सी खोयी-
खोयी आँखें – बारिश में भीगते हुए वह मेरा सूटकेस उठाकर ले जा रहे थे।
वह नित्ती भाई थे। और इरा— वह पहले दिन से ही मेरी दोस्त-सी बन गयी
थी—शायद इसलिए कि विट्टी के दोस्तों में वह सबसे छोटी थी। मुझे कभी-कभी
काफी हैरानी होती थी कि कोई लड़की इतने बरस बाहर गुजारकर हिन्दुस्तान
आ सकती है—थियेटर के लिए।
सिर्फ थियेटर के लिए ? मैंने यही बात एक बार विट्टी से पूछी थी। क्या
सचमुच थियेटर से इतना प्यार करती है ?
"पता नहीं।" विट्टी ने टालते हुए कहा, "वह किससे प्यार करती है ?"
विट्टी कभी अपने दोस्तों के बारे में उसे नहीं बताती थी। वह उन
बताती थी, जिसके सहारे मैं खुद ढूंढ़ सकूं, खुद अपनी आँखों से देख सकूं—
देखना—वैसे ही जैसे मैंने विट्टी के साथ हुमायूं का मकबरा देखा था
किला। अँधेरी सीढ़ियाँ जहाँ बादशाह लुढ़कते हुए गिर गये थे। म
विट्टी उतना ही बताती थी जितना टूरिस्ट गाइड—यह इरा है, यह
डैरी हैं जो एक जमाने में कालेज छोड़कर भाग गये थे और अब थिये
और यह हैं नित्ती भाई, आर्किटैक्ट, जो हमारे नाटकों के सैट भी बन

सूचनाओं के आगे चुप्पी के खोखल खुल जाते थे, मडकों पर मुँह फाड़ते 'मैन-होल्स' की तरह, जिनमे बचकर मैं आगे निकल जाता था।

मैं सचमुच बचकर निकल गया। वे बातें कर रहे थे, मुझे भूल गये थे। मैं अकेला छूट गया था। मैं धीरे-धीरे सरकता हुआ कमरे के दूसरे छोर पर चला आया। एक दरवाजा दिखायी दिया—आधा खुला हुआ। भीतर झाँका, तो कोई नही था—मैं चुपके-से भीतर चला आया। एक छोटी-सी कोठरी थी, रेल के डिब्बे की तरह—दीवार मे जडी एक आलमारी थी, जिसमे ताला लगा था। उसके पास ही एक सोफा था जिसके सिरहाने एक कुशन और कुछ किताबें रखी थी। सम्भव है, जब नित्ती भाई काम करते-करते थक जाते होंगे तो यहाँ कुछ देर सुस्ताने लेट जाते होंगे। कोठरी से सटा बाथरूम था। बत्ती खुली थी—और उसकी रोशनी में टब की सफेद चिकनी तह चमक रही थी। एक कमोड और कुछ बाल्टियाँ—पीछे एक खिडकी खुली थी, जहाँ से कनाट प्लेस के पिछवाड़े की गलियाँ दिखायी देती थी।

सोचा, वापिस मुड जाऊँ। किसी अकेले घर में घूमना, जब उसके मालिक साथ न हों, एक अनाथ-सी वीरानी ले आता है। एक सूखी-सी प्यास गले मे कुडकने लगी। नल सिर्फ टब मे लगा था। टूटी खोलने के लिए झुका, तो आँखें खूँटी पर अटक गयी। टब के पीछे हैंगर लगे थे—उन पर धुले हुए पेटीकोट, ब्रा और अण्डरवियर लटके थे। कगर पर क्लिप रखे थे—पाउडर का एक डिब्बा, इत्र की छोटी-सी शीशी। सिगरेट और माचिस की डिब्बी और डिब्बी के ऊपर रखे दो क्लिप, जिन पर अब भी इरा के बालो की गन्ध चिपकी थी, वही सिगरेटें जिन्हें वह पीती थी, वही पैंटी, वही साये, वही गन्ध, खास औरतो की गन्ध जो पुरुष के मर्दाने मकान में अपने कोने ढूँढ लेती है, गुसलखाना, टब, गीले कपड़ों के हैंगर, पम्प का पानी; यह रोशनी है, उसने सोचा, वह यहाँ आती होगी, नहाती होगी, खिड़की के बाहर बाराखम्बा के बौराये पेडो और हवा और बत्तियों को देखती होगी। मुझे क्या मालूम था, एक दिन मैं दुबारा इस गुसलखाने में आऊँगा, सुबह की मैली रोशनी टब पर उतरेगी, सुर्ख और लिसलिसे पानी पर एक लोथ ऊपर उठेगी और पानी नीचे बहता रहेगा···

यह बहुत आगे का दृश्य है, किन्तु पुरानी नोटबुक पढते हुए अक्सर समय की रील गड़बडा जाती है, जो बाद मे हुआ था, वह पहले दिखायी देने लगता है और हम दीवार पर भविष्य को उल्टी तरफ से आता हुआ देखते हैं, उन पेड़ो और खम्बों की तरह जो रेल की खिडकी से विपरीत दिशा में भागते हुए दिखायी देते

ीर हम एक क्षण के लिए भूल जाते हैं कि वे हमारी तरफ नहीं, हम उनकी
फ जा रहे हैं।

किन्तु उस दिन 'मैं' वहाँ था, मैं खुद अपनी नोटबुक पर अपने को लिखता
आ, दर्ज करता हुआ, भविष्य से कोरा अनभिज्ञ, वर्तमान की रोशनी के कोनों
को कुतरता हुआ, बाथरूम में खड़ा हुआ, टूटी खोलकर पानी पीता हुआ, देखता
हुआ, उन आवाजों को सुनता हुआ जो दूसरे कमरे की देहरी लाँघकर मेरे पास
आ रही थीं। मैं शब्दों को नहीं सुन सकता था—इसीलिए वे इतनी आदिम,
इतनी साफ, इतनी नंगी थीं कि मैं सीधे-सीधे उन्हें पहचान सकता था, यह डरा है,
यह चिट्टी, यह नित्ती भाई; वे शान्त जल में हिलती छायाओं-सी दिखायी देती
थी—, पहली बार मुझे पता चला, कि शब्दों को तुम सुनते हो, लेकिन आवाजों
को देखा जा सकता है, सन्नाटे की दीवार पर वे फ्रिस्कोज हैं, जिनके बीच गुस्से,
पीड़ा, पछतावे का पलस्तर झरता रहता है, जहाँ चुप्पी के अपने रंग हैं, हँसी की
अपनी रोशनी, सोचने की अपनी स्पेस; बरसों बाद जब मैं अपनी डायरी पढ़ूँगा,
तो शब्दों के सहारे नहीं···इन्हीं अदृश्य सुरागों को छूता हुआ इस शाम तक चला
आऊँगा, और तब मुझे पता चलेगा कि वह शाम कुछ भी नहीं है, वह हमेशा के
लिए चली गयी है, और मैं बीते हुए समय को नहीं, सिर्फ उसकी 'याद' को याद
कर रहा हूँ जो मेरे भीतर है, टब, कपड़े, सिगरेट की डिब्बी—ये छलनी से छनकर
भीतर की बावड़ी में टप-टप टपकते हैं और तब सहसा याद आता है, उस टप
टपाहट को सुनते हुए, कि वह मार्च की एक शाम थी, मैं नित्ती भाई के घर गय
था; मैं गुसलखाने में खड़ा था और वे कमरे में बैठे थे; उनकी आवाजों के घोंस
में सुखी और सुरक्षित; दूसरे लोगों से अलग रहकर जो सुख आता है, वह अ
पर पट्टी बाँधकर आता है, कानों में रुई के फाये भरे होते हैं, कहता है,
मत देखो, कुछ मत सुनो, सिर्फ लिखते रहो, अपनी उस नोटबुक पर, जो माँ ने
से पहले तुम्हें दी थी, तुम्हारी दिल्ली की रिपोर्ट, जिसका एक पन्ना उस श
जुड़ा है, एक चीख की खूँटी पर टँगा हुआ, एक तस्वीर की तरह, जिसे तुम
हो, पीछे मुड़कर देखते हो और तब···

मैं मुड़ गया, उलटे पाँव लौट गया। लेकिन वे आवाजें? एक क्षण
मुझे भ्रम हुआ, जैसे पड़ोस के फ्लैट में कोई बोल रहा है—चीख, और फुस
के बीच में उफनता स्वर, जिसके टुकड़े हर कमरे में सुनायी दे जाते थे;
कदमों से बड़े कमरे में आया—वहाँ कोई नहीं था। सिर्फ चाय की तीन
खाली पड़ी थीं। जीने का दरवाजा खुला था। चिट्टी वहाँ अकेली खड़ी

उसने मुझे देखा, जैसे मैं कोई प्रेत हूँ, किसी अँधेरे कोने से बाहर निकल आया हूँ। मैं भागता हुआ उसके पास आया। लेकिन पास आते ही पाँव ठिठक गये।

दूसरे कमरे में कोई चीख रहा था—एकाएक मुझे पता नहीं चला यह कौन है, चीख, जिसका नाता किसी से नहीं होता, जो अकेले में अपने-आप गूंजती है। मैंने अनायास बिट्टी का हाथ पकड लिया—और तुरन्त छोड दिया।

सब कुछ शान्त हो गया था। कुछ देर तक कोई आवाज नहीं सुनायी दी—मानो सारा घर खाली हो। फिर हल्की-सी खटखटाहट हुई—और मैंने देखा—इरा दूसरे कमरे से बाहर निकली है। वह जल्दी-से जीने के पास आयी—और बिट्टी के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिये।

"तुम जाओ···मैं कुछ देर बाद आऊँगी।" उसकी आँखें सूज गयी थीं। लम्बे बाल गले से लिपटे थे—साडी का पल्ला जमीन पर घिसट रहा था—सूखे होठों के बीच एक वीभत्स-सी मुस्कराहट दिखायी दे रही थी।

बिट्टी देखती रही।

पीछे निक्की भाई आये थे—अपना हाथ इरा के कन्धे पर रख दिया था। दोनों खड़े थे—हमें देख रहे थे।

बिट्टी चुपचाप जीने की सीढियाँ उतरने लगी।

लेकिन मैं? मैं अब भी वहाँ खडा हूँ—नोटबुक के ठहरे समय पर एक ठिठका-ठिठुरता हुआ जीव, जो लिखते हुए ऊपर देखता है, तो हर बार दो शक्लें दिखायी दे जाती हैं, एक दूसरे में बँधी हुई···मुझे लगता है, वे उस समय तक बँधी रहेंगी, जब तक मैं ऊपर देखता रहूँगा।

५

क्या तुमने उन्हें देखा है—उन बँगलों को ? इसे लुटियेन्स का शहर कहा जाता है, रायसीना के बँगले। वहाँ लम्बे लान हैं, झाड़ियों से घिरे हुए, पेड़ों से घिरे हुए। वे जामुन के पेड़ हैं, जो बारिश के दिनों में पकते हैं, टपाटप नीचे गिरते हैं। जरा ऊपर देखो, तो बुगुवगोलिया के फूल दिखायी देंगे, लाल और सुर्ख, बँगलों को अपनी लपटों में लपेटे हुए। लेकिन—भीतर ठण्डा अँधेरा है; जाली की हरी, दुहरी खिड़कियाँ हैं; एक उनींदा-सा शोर है, जो झाड़ियों को छूता हुआ भीतर आता है, अकेली नौकरानी को अपनी दुपहरी ऊँघ से जगा जाता है, शोर, जिसे सुनकर चुहिया आलमारी के पीछे दुबक जाती है और छिपकली मुँह उठाकर उसे देखने लगती है, जो हर जगह है—और कहीं नहीं है।

लेकिन वे वहाँ हैं, बाहर पेड़ों में छिपे हुए। तुम सुनते हो ? वे हँस रहे हैं। रिहर्सल का कोई टुकड़ा हवा में तिरता हुआ यहाँ चला आता है, जहाँ वह खड़ा है, खाली। घर भी खाली है—डैरी का बँगला—ईंटों की फेंस से घिरा हुआ, जिस पर घास का मैदान एक जापानी पंखे-सा खुला है।

उसे मालूम है। विट्टी ने उसे इस बँगले के बारे में इतना कुछ बताया था, कि वह जहाँ चाहे जा सकता है, आँखें मूँदकर घूम सकता है, पेड़ों के नीचे, झाड़ियों में, ईंटों की मेंड़ों पर। जब डैरी के पिता टूर पर चले जाते थे, घर खाली हो जाता था, और वे रिहर्सल के लिए यहाँ आ जाते थे—अगर मौसम खुला हो—जैसा कि अक्सर मार्च के दिनों में वह हो जाता था।

डैरी की माँ कहाँ रहती है, यह उसे नहीं मालूम था। विट्टी चुप रहती थी और डैरी भी इसके बारे में कुछ नहीं कहते थे। वह कहते कुछ नहीं थे, सिर्फ अपने घर बुलाते थे लेकिन वह बीच में बीमार पड़ता गया और बाद में रिहर्सल होने लगे और विट्टी देर से घर आने लगी और झगड़े की रातों में डैरी मोटर-साइकिल पर चले जाते और विट्टी छत के बीचोंबीच बैठी रहती और हवा में घास के तिनके बिखरे रहते, जिसमें डैरी बियर की बोतलें लपेटकर लाते थे,

खुशी की रौ मे कहते थे, यह हमारे लान की घास है और उसे उनकी इन बातों पर रोना-सा आने लगा था।

वही घास अब चारो तरफ फैली थी। वह शाम की आखिरी रोशनी को पकड़ रही थी, बँगले की पीली दीवारों पर उतरती हुई—दूर से उनकी आवाजें सुनाई देती थी—रिहर्सल का शोर—ऐक्टरो की आवाजें, झाड़ियों के पीछे पैरो की सरसराहट, हँसी, हवा मे उडती हुई बातें, चेहरे, जिन्हे वह नही देख सकता था क्योंकि वे लान के दूसरे छोर पर थे जहाँ जमीन का हिस्सा एक पहाड़ी-सा ऊपर उठ आया था—ऊँट के गोमड-सा—घास का एक टैरेस, चारों तरफ अमलतास के पेड़ो से घिरा हुआ, धूप मे सुलगता हुआ, एक झिलमिलाता स्टेज, जिस पर नित्ती भाई 'सी-गल' करना चाहते थे लेकिन अब वहाँ स्ट्रिनबर्ग का कब्जा था, एक पिंजरा, पिंजरे मे घूमता हुआ अदृश्य चीता, धूप के सीकचो के बाहर झाँकता हुआ— गुर्राता हुआ—क्या तुम उसे सुन सकते हो ?

वह सुन सकता था—सुन्न सन्नाटे मे अपनी साँसो को, हल्के बुखार मे तपती और ऊपर उठती हुई; वे बहुत अच्छे लोग थे, बिट्टी के दोस्त और खुद बिट्टी भी, वे उस पर विश्वास करने लगे थे, वे उसे अकेला छोड देते थे। वह जहाँ चाहे जा सकता था, घूम सकता था, भटक सकता था। वह घूम रहा था। वह भटक रहा था। वह अकेला था। वह उन्हे भूल-सा गया था। वह पेडो के नीचे चल रहा था।

अचानक एक चिड़िया झाडियो मे उडी और पेडो के ऊपर चक्कर काटने लगी। फिर दूसरी चिडिया; फिर तीसरी। हवा में फडफडाते पखों का रेला उठने लगा। किसी ने ऊपर से एक पत्थर झाड़ियो मे फेंका था—फिर एकसाथ ढेलो की बौछार होने लगी। कौन हो सकता है ? उसने ऊपर देखा। पत्तों और टहनियों के बीच उसे आभास हुआ, जैसे कोई ऊपर बैठा है, नीचे झाँक रहा है।

"कौन है ?" और ऊपर से आवाज आयी—"कौन ?" उसे पता नही चला, वह उसकी आवाज है—या महज एक गूंज। वह दुबारा बोला—"कोई है ?" और पत्तो के बीच छनती हुई आवाज आयी—"है ?"

वह हैरानी से ऊपर देखने लगा, लेकिन तभी घास पर छप्प से कोई नीचे कूदा। पलक मारते ही वह उसके सामने खड़ी थी—एक लम्बी, छरहरी लड़की। धूप के दो छल्ले उसकी बड़ी, भूरी आँखो मे चमक रहे थे।

"तुम ?"

वह उसके पास चली आयी, एक हाथ में गुलेल थी, दूसरे हाथ मे पत्थर। पाँव

थे, मिट्टी और कीचड़ में लिथड़े हुए। उसने एक नीली फ्राक पहन रखी थी
घुटनों तक आती थी। फ्राक के अगले हिस्से पर दोनों तरफ जेबें थीं, जिनमें
ने ढेले भर रखे थे।
उसका मुँह खुला था और आँखें उस पर टिकी थीं।
"मुझे मालूम है, तुम कौन हो ?" उसने कहा।
वह हैरत में उसे देख रहा था।
"कज़िन"...वह मुस्करायी और सहसा उसका चेहरा आलोकित हो उठा।
"यू आर दि लिटल कज़िन।"
वह उसकी तरफ बढ़ी, हाथ आगे बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ लिया।
"तुम इलाहाबाद से आये हो ?"
"वहाँ मेरा घर है।" उसने कहा।
"मुझे मालूम है— मैंने सोचा था, मैं तुम्हें कभी नहीं देखूंगी।"
"क्यों ?"
"डैरी कहते हैं, तुम कभी घर से बाहर नहीं निकलते—" वह एक क्षण
झिझकी, फिर हल्की उत्सुकता से उसकी ओर देखा—
"तुम बीमार रहते हो ?"
उसकी आँखें उस पर टिकी थीं—बनैली, साफ और बीहड़।
"मैंने तुम्हें टैक्सी से उतरते देखा था।" उसने कहा, "मुझे मालूम था, तुम
आओगे। वे चले जाते हैं। वे मुझे देखते भी नहीं। लेकिन तुम पहली बार आये
हो..."
"कौन चले जाते हैं ?"
"वे सब !" उसने गुलेल का रबड़ झुलाते हुए कहा, "ऐक्टर, लड़कियाँ, डैरी
के दोस्त—जानवर !"
"यहाँ जानवर आते हैं ?"
"क्यों नहीं।" उसका हाथ ठिठक गया।
"पैन्थर भी ?"
"पैन्थर ?" उसने सन्देह से उसकी ओर देखा—"क्या वे तुम्हारे घर आ
हैं ?"
"नहीं—मैंने सिर्फ सोचा था।" उसने कहा।
वह उसे ध्यान से देखती रही—जैसे उसे अपनी जंगली निगाहों पर त
रही हो—एक अदृश्य तराजू पर। दुश्मन या दोस्त—या यूं ही कोई भटक

लड़का ? फिर अचानक उसे याद आया, कोई बहुत पुरानी चीज। धूप में उसकी भूरी आँखें सुलगने लगीं।

"क्या उन्होंने मेरे बारे में कुछ बताया था ?"

"तुम डैरी की बहिन हो।"

"और कुछ नहीं ?"

"नहीं," उसने सिर हिलाया।

वह निश्चल खड़ी थी। वह सुन रही थी। उनके बीच सन्नाटा था। और वह इतना गहरा था कि उसे लगा, जैसे वह उसके सुनने को सुन सकता है, जैसे उनकी आवाजें पहले उसके पास आती हों और फिर उसके कानों से छनकर उसके पास···

"तुम्हारी कजिन की आवाज है···" उसने कहा। "क्या नाम है उसका ?"

"बिट्टी।" वह हँसने लगी, "मैं उसकी आवाज हमेशा पहचान लेती हूँ।"

पता नहीं क्यों—उसे लगा, जैसे उसके स्वर में एक हिकारत-सी भरी थी, एक छिछोरा-सा मजाक—उसका मुँह सूख गया।

"यह उसका पार्ट है !" उसने कमजोर लहजे में कहा, मानो वह इस तरह बिट्टी को बचा लेगा।

"कैसा पार्ट ?" एक अजीब हिकारत में उसके होंठ खुल गये, "वे अपने को धोखा दे रहे हैं।"

"धोखा ?"

"दे आर रुइनिंग देयर लाइव्स···" 'रुइनिंग' का मतलब जानते हो ?"

वह हँस रही थी।

"बर्बाद करना, खत्म कर देना, तबाह कर देना।" उसने कहा।

गुलेल का काला फन्दा उसकी आँखों के सामने झूल रहा था। डरे हुए पक्षी पेड़ों पर घूम रहे थे। वह चौकन्नी आँखों से उसे छू रही थी—और तब उसे पता चला, उसकी आँखों की पुतलियाँ धूप में नहीं, खुद अपनी रोशनी में चमक रही थीं।

"तुम भी ऐक्टिंग करते हो ?" उसने पूछा।

"नहीं···" उसने जल्दी से कहा।

"थियेटर जाते हो ?"

"एक बार गया था, रिहर्सल देखने," उसने कहा, फिर साहस बटोरकर पूछा, "तुम्हें थियेटर पसन्द नहीं है ?"

"वे अपना समय बर्बाद करते हैं," उसका स्वर थका-सा था, खाली, हताश-

कभी वहाँ नहीं जाती।"

यों ?"

वह असली नहीं है।" उसने कहा, इतनी धीरे से, मानो उसे कोई गुप्त,
य रहस्य बता रही हो—"वे बहाना करते हैं।"

कैसा बहाना ? वह विस्मित-सा होकर उसे देखने लगा, रूखी आँखें, धूल में
ाल, हिंस्र-सी कुलबुलायी मांसलता, जो सिर्फ जंगली जानवरों में दिखायी
है, या जवान होती अकेली लड़कियों में···

असली क्या है ?

दूर से आवाजें आती थीं, ऊपर उठती थीं, नीचे गिर जाती थीं, मर जाती
ं। पीछे-पीछे उनकी गूंज आती थी, हर आवाज को जिलाती हुई, हवा में उठाती
ई, वापिस ले जाती हुई···

वे अकेले पड़ गये थे। वह लौटना चाहता था, लेकिन तभी उसे एक दबी
फूत्कार-सी सुनायी दी, जैसे कोई गोली सनसनाते हुए कानों के पास से गुजर
जाती है। यह उसकी साँस थी। वह उसके पास चली आयी थी, एक बिल्ली की
तरह चुप और चालाक कदमों से; होंठ खुल गये थे, जिसके बीच उसके दाँत
बाहर निकल आये थे। वह मुस्करा रही थी, उसने अपनी गुलेल का अगला हिस्सा
ऊपर उठाया और पिस्तौल की नली की तरह उसके गले पर टिका दिया, "हैंड्स
अप !"

एक थरथराती-सी काँध उसकी शिराओं में लपकी, उसने आँखें मूंद लीं;
मार्च की हवा, रिहर्सल की आवाजें, डूबते सूरज की पीली चमक—सब कुछ गुलेल
काली नोक और गले की भीतर फँसी साँस पर थिर हो गया था—क्या यह
ली है ?

"हलो, हलो, हलो," वह उसे हिला रही थी। आँखें खुलीं, तो उसकी आँखें
खायी दीं, उसके चेहरे पर झुकी हुई, वनैली, वीहड़ आतंकित, "मैंने सोचा, तु
चमुच मर गये।" वह धीरे-धीरे उसके गले को सहलाने लगी, "तुम सिर्फ ऐक्टि
कर रहे थे !"

वह अपने दिल की धड़कन सुन रहा था। क्या यह लड़की पागल है, या वि
बहाना कर रही है—उसे चिढ़ा रही है। मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए, ले
कहाँ ? वह उसका रास्ता रोके खड़ी थी।

वह उसके पास आयी, धीरे-से उसके गालों को छुआ, "तुम बिल्कुल
हो," उसने कहा, "क्या तुम चल सकते हो ?"

उसने आँखें ऊपर उठायी, जी कड़ा करके कहा—"मैं घर जाऊँगा।"

"घर ?" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। "यह घर नहीं तो क्या है ? चलो, मैं तुम्हें घर दिखाती हूँ।"

उसके स्वर में नम्र-सा आग्रह था, जिसमें जोर या जबरदस्ती नहीं थी—सिर्फ एक भूखा-सा बुलावा—जिसे टालना असम्भव-सा जान पड़ता था।

वह उसके पीछे-पीछे चलने लगा—सूरज अभी नहीं डूबा था और बँगला एक ताश के बँगले की तरह खड़ा था—अकेला, शहर से अलग, धूप में चाँदी-सा चमकता हुआ···और उनकी आवाजें दूर पेड़ों के टैरेस से तिरती हुई उसके पास चली आती थीं।

बँगले के पिछवाड़े आकर वह ठिठक गयी—एक बरामदे के सामने—जिसके आगे सिर्फ नौकरों के 'आउट हाउस' थे—छोटे-छोटे बबाटर, जिनकी छतों से धुआँ निकल रहा था।

वह बायीं तरफ मुड़ी और चिक उठाकर भीतर चली गयी। वह बाहर ठिठका खड़ा रहा—मन में जबरदस्त इच्छा हुई, कि वह मुड़ जाये, समय रहते उससे अपना पीछा छुड़ाकर भाग जाये—लेकिन वह कुछ निश्चय कर पाता—इससे पहले ही उसने चिक उठाकर बाहर झाँका, "इधर।" उसने कहा और उसका हाथ पकड़कर भीतर खींच लिया।

भीतर अँधेरा था। एक क्षण के लिए वह कुछ भी नहीं देख सका। लड़की ने बत्ती जलायी और अचानक उसकी दोनों आँखों को भींच लिया। वह छटपटाने लगा, लेकिन उसके दोनों हाथ लोहे के पंजों से उसकी आँखों पर गड़े थे।

वह हँस रही थी। वह सचमुच पागल थी। वह भरसक उसके हाथों को हटाने की कोशिश करने लगा किन्तु उसकी अँगुलियाँ उसकी आँखों पर दबती गयीं, और तब गुस्से की रौ में उसने अपने नाखून उसकी बाँहों पर झोंक दिये।

वह छिटककर अलग खड़ी हो गयी, अपनी बाँहों को देखने लगी, जिन पर खून की बूँदकियाँ उभरने लगी थीं।

"ब्रूट!" वह अपनी बाँह के छिले मांस को सहला रही थी।

वह खड़ा था, शर्म में भीगा हुआ, उसके भीतर कोई चीज थरथरा रही थी। मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ ? इस लड़की के साथ, जिसे मैं जानता भी नहीं···इस कमरे में, जिसे कभी देखा नहीं, इस घर में···

लेकिन इस बार लड़की ने सचमुच उसे अकेला छोड़ दिया था—न बैठने का आग्रह किया, न उसे मनाने की कोई कोशिश। उसने चिक का एक सिरा उठा

दिया था—पलँग के एक सिरे पर बैठकर वह बाहर ताक रही थी।

कुछ मिनट ऐसे ही गुजर गये। लड़की की चुप्पी का फायदा उठाकर उसने चारों तरफ देखा—वह कमरा नहीं था। बँगले के पीछे बरामदे में चिकें डाल दी गयी थीं। एक पलँग था, जिसके सिरहाने एक लम्बा लैम्प हरे शेड में ढँका था। किताबों की अलमारियाँ चारों तरफ खड़ी थीं, जैसे वह कोई छोटी-सी लाइब्रेरी हो। पलँग के पास ही एक मेज थी, जिस पर टाइपराइटर रखा था—एक लम्बा कागज उसमें अब भी फँसा था मानो कोई बीच में लिखता हुआ उठकर चला गया हो।

दीवार पर एक खूँटी थी, जिस पर नीली स्लैक्स लटक रही थी।

"तुमने कुछ कहा?" लड़की ने मुड़कर उसकी ओर देखा।

"नहीं," उसने सिर हिलाया। उसने कुछ नहीं कहा था, वह सिर्फ बोलने का बहाना चाहती थी।

"तुम अब भी नाराज हो?" वह मुस्करा रही थी। "देखो, तुमने क्या किया है?"

उसने अपनी बाँह आगे बढ़ा दी—साँवली नंगी बाँह, छोटे-छोटे रेशों से बाल—जिनके बीच उसके नाखूनों के निशान चमक रहे थे।

वह भयभीत-सा होकर उसे देखने लगा उस निरीह, खून की खरोंचों से भरी बाँह को—एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हो सका, यह उसके नाखूनों की करामात है। वह अपने को भूल-सा गया। उसके पास चला आया। अपना हाथ उसकी बाँह पर रख दिया।

वह अपलक उसकी ओर देख रही थी। होंठ चंगुल-भर खुल गये थे जैसे कभी-कभी डैरी के होंठ खुल जाते थे, लेकिन डैरी से अलग – वह कहीं दूर थी। माँद में छिपे जानवर की तरह सतर्क, चौकन्नी, दुनिया की हर आवाज़ को अपनी आत्मा की खाल पर खटखटाती हुई···एक क्षण, दो क्षण, और फिर जैसे अन्तहीन समय बह गया—उसकी बाँह उसकी अँगुलियों के नीचे शिथिल और अधर पड़ी रही।

"तुम्हारी आँखें," उसने कहा।

"क्या?"

"वे बिल्कुल तुम्हारी बहिन पर गयी हैं।"

"वह मेरी कजिन है।" उसने कहा।

"मुझे मालूम है—तुम्हारे चाचा की लड़की।"

वह अपनी बाँह उसके हाथ के नीचे से सरकाकर ऊपर ले लायी, लेकिन उसे छोड़ा नहीं, उसकी हथेलियों पर उसके हाथ पड़े रहे, सूखे, धूल में सने हुए, हल्के से गर्म।

गुलेल अब भी उसके गले में लटक रही थी—छाती के दो उत्सुक उरोजों के बीच—एक काले टोटके-सी, तिब्बती लड़कियों की तरह, जो अपने गले में जादू-मन्त्रों की माला लटकाये रहती है।

"तुम यहाँ कितने दिन रहोगे ?" उसने पूछा।

"कुछ और दिन।" उसने कहा।

"फिर ?"

"मैं इलाहाबाद लौट जाऊँगा।"

उसकी आँखें ऊपर उठीं, बहुत धीमे स्वर में पूछा, "यहाँ नहीं रहना चाहोगे ?"

"वहाँ मेरा घर है।" उसने कहा।

"तुम्हारी कजिन का घर भी वहाँ है, लेकिन वह यहीं रहती है।"

"उसकी बात अलग है।" उसने कहा, "वह अपना घर छोड़कर आयी है।"

वह धीरे-से हँसी।

"वे सब लौट आते हैं।"

"कहाँ से लौट आते हैं ?"

"बाहर से···" वह एक क्षण उसे देखती रही, "बाहर की दुनिया से।" उसने कहा।

रोशनी उसके बालों पर गिर रही थी। खुले हुए घने बाल दोनों कन्धों पर बिखर आये थे। चेहरा तपा-सा चमक रहा था, लेकिन उत्तेजित नहीं, एक ठण्डा, सफेद ताप जो देह की सतह पर भाप की तरह जमा रहता है।

"तुम कहीं बाहर नहीं जाती ?"

"बाहर कहाँ ?"

"स्टूडियो में···" उसने कहा। "स्कूल···"

वह आगे कुछ नहीं कह सका। उसे लगा, वह अचानक सहम गयी है, पीछे मुड़ गयी है, किताबों की आलमारी के पास जाकर ठिठक गयी है।

"मैं नहीं जा सकती।" उसने कहा।

"क्यों ?"

"वे किसी भी वक्त आ सकते हैं···मैं हमेशा तैयार रहती हूँ।"

वह समझा नहीं—सिर्फ एक अजीब डर का स्वाद मुँह में चला आया। वह बिल्कुल चिक के पास खड़ा था, कुछ भी होगा, तो वह फौरन बाहर निकलकर भाग सकता है ; लेकिन वह अपनी जगह पर खड़ी रही, न हिली, न डुली; एकटक उसकी ओर देखती रही।

"वे कौन ?" उसने साहस बटोरकर पूछा, "कौन आ सकता है ?"

"बाहर के लोग," उसने कहा। "वे कुछ भी कर सकते हैं।"

वह धीमे कदमों से उसके पास आयी, उसके हाथ को अपने हाथ में ले लिया, एक क्षण उसकी आँखों में झाँका, "डैरी ने तुम्हें कुछ नहीं बताया ?"

"किसके बारे में ?"

"वह बाहर गये थे।" उसने कहा, "वह एक दिन अचानक चले गये और हमें कुछ भी पता नहीं चला। तुम कभी गाँवों में घूमे हो, लोगों के बीच ?"

"नहीं," उसने सिर हिलाया।

"मैं भी नहीं; वह उनका दुख दूर करने गये थे···तुमने कभी उसे देखा है ?"

"किसे ?"

"दुःख को," एक अजीब-सी उलझन उसके चेहरे पर खिंच आयी। "मैंने भी नहीं देखा···लेकिन कभी-कभी तुम्हारी कजिन यहाँ आती है और मैं छिपकर उसे देखती हूँ। वह यहाँ आकर अकेली बैठ जाती है, पता नहीं क्या सोचती रहती है और तब मुझे लगता है कि शायद यह दुःख है।" वह धीरे-से हँस पड़ी। "इसीलिए मैं कहीं नहीं जाती। यहाँ कोई नहीं आ सकता; न दुःख, न डर, न बाहर के लोग।"

वह चुप हो गयी। उसे लगा, वह अपने ध्यान में है। उसे भूल-सा गयी है; अकेले लोग कभी-कभी अपने से बोलने लगते हैं। उन्हें कुछ भी पता नहीं रहता, सिर्फ यह पता रहता है, कि वे सुरक्षित हैं। अपनी चीजों के बीच बैठे हैं, किताबों की आलमारी, टाइपराइटर, खूँटी पर टँगी हुई स्लैक्स; कभी-कभी हवा से बरामदे की चिक उठ जाती, बाहर की पीली, धुँधुआती रोशनी भीतर चली आती, उसके साथ रिहर्सल की आवाजें, पेड़ों की सरसराहट, बँगले के सन्नाटे को थपथपाकर वापस लौट जाती, गुम हो जाती। वह उनके साथ घिसटता जाता, बाहर भी, भीतर भी, एक अनहोने मोह की आँच में तपता हुआ, बाहर का अँधेरा जैसे कहीं लड़की की आदिम, निडरता से जुड़ा था और वह उससे बँधा था, वह उसके साथ कहीं भी जा सकता था, वह एक क्षण के लिए भूल गया, यह वही लड़की है, जिसे उसने पागल समझा था, जो पेड़ से कूदी थी, गुलेल से उसके

गले को दबाया था, आंखो को भीचा था। पागल ? दिल की दो धड़कनो के बीच कौन-सी जगह है, जो गैर-पागल है; वह कुछ भी नही सोच रहा था। वह सिर्फ उसे देख रहा था, जो उसके सामने बैठी थी, गठा हुआ सहमा, सांवला चेहरा, भूरी और भूखी आंखें, धूल में सने बाल जो कन्धों के नीचे एक काले झक्कड़-से लेटे थे, गले मे लटकती हुई गुलेल और जेबो में ठुंसे पत्थर···।

वह मुस्करा रही थी। वह दबे कदमो से उसके पास चली आयी थी और उसे पता भी नही चला, कब वह आकर उसके सामने खड़ी हो गयी है। उसकी सांसें उसके चेहरे को छू रही थी, बल खाती हुई सांस, जिसे छूते ही देह बलने लगती है।

"कुछ देखोगे ?"

उसने कुछ इतने चुपके से कहा, मानो यह उसका भ्रम हो। उसने उत्तर की प्रतीक्षा भी न की·· वह उसके निकट चली आयी, लेकिन रकी नही, सीधे किताबों की आलमारी के सामने ठिठक गयी। कुर्सी को शेल्फ के सामने खीच लिया, उस पर चढ गयी, फ्राक का निचला सिरा ऊपर खिच गया, जिसके नीचे जांघिये की सफेद, उड़ती हुई झलक दिखायी दी। वह पजों के बल खड़ी हुई किताबो के पीछे कुछ टटोल रही थी। कुछ देर बाद उसका हाथ बाहर आया और उसने देखा, कि उसमें चमडे का लम्बा केस है, लकड़ी का हैण्डिल बाहर निकला था। वह कुर्सी मे नीचे उतर आयी, हैण्डिल को फटाक मे पीछे खीचा—और तब उसने देखा—सिरसिराते सांप-सा एक चाकू बाहर निकल आया है।

वह बीच कमरे मे खडी थी—और वह विस्मृत, मन्त्र-मुग्ध-सा होकर उसे देख रहा था, चेहरे और चाकू के बीच उस मुस्कराहट को, जो एक ठण्डी कौंध-सी हवा में ठहरी थी।

"तुम देखना चाहोगे ?" उसने उसकी ओर देखा। "डरने की बात नही है।"

नही, वह डर नही रहा था; वह अपनी जगह खडा था। उसे लगा, यह एक स्वप्न है, जब भीतर का डर अपनी धुंधली हद को लांघता हुआ बाहर की चीजों को आलोकित करने लगता है, चाकू, लडकी, लान का अंधेरा, उसके परे उनकी आवाजें; सहसा उसे लडकी की बात याद हो आयी, "क्या यह असली है ?"

हां, जरूर असली है, जैसे मैं हूं, इस लडकी के सामने खड़ा हुआ; वह चाकू की धार पर अपनी उंगलियां फेर रही है, और यह चाकू भी असली है। मैं जब चाहूं तो हाथ आगे बढ़ाकर उसे छू सकता हूं, लेकिन मैं ऐसा करता नही, मुझे

लगता है, मैं ज़रा-सा भी हिलूंगा, तो सबकुछ टूट जायेगा, तार-तार हो जायेगा।

वह भी निश्चल खड़ी थी। आँखें उठायीं, तो उनमें मुस्कराहट नहीं, एक गहरा-सा सोच भरा था। वह कुछ देर तक उसे देखती रही।

"खूबसूरत है या नहीं?" उसमें कितना व्यंग्य था, वह नहीं समझ सका, फिर भी हल्की-सी उत्सुकता जाग गयी—

"कहाँ से मिला तुम्हें?"

"मिला नहीं···मेरे पास था।" उसने कुछ सोचते हुए कहा, "मैं इसे हमेशा अपने पास रखती हूँ।"

"बहुत तेज़ लगता है।" उसने कहा।

"काफी तेज़ है···देखोगे?"

उसने चाकू उठाकर उसके गले की ओर इशारा किया। वह एक कदम पीछे हट गया और वह हँसने लगी।

"वे सब डर जाते हैं।" उसने कहा।

"कोई यहाँ आता है?" उसने किंचित् विस्मय से पूछा।

"पहले आते थे।" उसके स्वर में बहुत पुराने दिनों की तलछट उभर आयी, वह मेज़ के सामने चौकी पर बैठ गयी थी—चाकू मेज़ पर रख दिया···अपनी दोनों कुहनियों के बीच—जहाँ वह एक रोशनी के घब्बे-सा लेटा था।

"कौन आता था?" उसने पूछा।

"तलाशी लेने।" उसने कहा, "वे किसी भी समय तुम्हारी तलाशी लेने आ सकते हैं···मालूम है, तुम क्या करोगे?"

वह ध्यान से उसकी ओर देख रही थी, मुँह का कोर ज़रा-सा खुल गया था, इतना कम, कि उसे मुस्कराहट नहीं कहा जा सकता था, इतना ज्यादा भी नहीं, कि लगे, वह हँस रही है—अचानक उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया और उसकी हथेलियों को सहलाने लगी।

"तुम बीमार रहते हो, तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम।"

उसके स्वर में एक अजीब-सी हमदर्दी थी, जैसे वह कहीं ऊपरी मंज़िल से कुछ देख रही हो, और वह नीचे खड़ा हो, वह उसे कुछ बता रही है, जिसे वह नहीं देख पा रहा हो···

"तुम्हें यहाँ से चले जाना चाहिए।"

उसका स्वर सहसा बहुत धीमा हो गया।

"यहाँ से?"

"दिल्ली से…" उसने कहा। "अगर वे तुमसे पूछ बैठे, तुम यहाँ क्यों हो, तो तुम क्या जवाब दोगे ?"

वह हतप्रभ-सा उसे देखने लगा।

"यहाँ बिट्टी का घर है…" उसने कहा।

"बिट्टी कौन ?" उसका स्वर एकदम ठण्डा और अपरिचित-सा सुनायी दिया। "अगर वे तुम्हें बीच सड़क पर पकड़ लें तो ? तुम क्या उन्हें स्टूडियो ले जाओगे, यह बिट्टी है, तुम्हारी कज़िन ? यह स्टेज पर खड़ी हुई लड़की ?" वह हँस पड़ी, "वे तुम्हें पागल समझेंगे !"

उसने सशंकित निगाहों से उसे देखा।

"ऐसा नहीं हो सकता।" उसने अपकपाते हुए कहा।

"क्यों नहीं हो सकता ? अगर तुम बाहर हो, तो कुछ भी हो सकता है…। वे तुम्हें मार सकते हैं…मारकर कहीं भी फेंक सकते हैं। तुम्हारी लाश पड़ी रहेगी और तुम्हें कोई पहचानेगा भी नहीं, कि तुम कौन हो, कहाँ से आये हो, कहाँ रहते थे ?" उसकी आवाज धीमी पड़ने लगी, एक फुसफुसाहट में घुलने लगी, लेकिन पूरी तरह नहीं—वह एक लौ की नोंक पर मोम की तरह जमा हो गयी थी, जिसके इर्द-गिर्द बाहर का अँधेरा, मेज पर रखा चाकू, अलमारी की किताबें पीली छायाओं-सी सिकुड़ गयी थीं, खामोश नहीं, पर खामोशी की तरफ झुकती हुई…

"इसीलिए मैं कहीं नहीं जाती। मैं घर में बैठी रहती हूँ। मैं जागती रहती हूँ। वे किसी भी वक्त आ सकते हैं। वे आते ही घर का कोना-कोना छान डालेंगे, मेरी तलाशी लेंगे, बार-बार मुझसे पूछेंगे, कैसी कहाँ है ? कैसी कहाँ है ? मैं उन्हें हर जगह ले जाऊँगी, कमरों में, बाग में, झाड़ियों के पीछे, मैं उनसे कहूँगी, यहाँ कोई नहीं है, सारा घर खाली है, यहाँ मेरे अलावा कोई नहीं रहता…"

"यहाँ सिर्फ मैं हूँ।"

उसका हाथ चाकू पर था। छोटी, साँवली छाती ऊपर-नीचे हिल रही थी, साँसों के साथ-साथ सिहरती हुई ; गले में लटका गुलेल का धागा हवा में झूल रहा था।

सहसा उसने चाकू ऊपर उठा लिया—जैसे वह कोई आईना हो—उसके नंगे ब्लेड की छाया उसके चेहरे पर गिर रही थी—वह पास आयी, और धीरे-से फुसफुसाकर कहा, "तुम देखोगे ?"

वह बिफराया-सा उसे देख रहा था।

"तुम जानना चाहते थे, डैरी कहाँ गये थे ?···यहाँ से, इधर आओ, बस अब देखो···इस तरह नहीं ! इस तरह तुम्हें सिर्फ अपनी छाया दिखायी देगी···आगे आओ, देखो,···कितनी धूप है, खेतों के पीछे, इधर, नीचे, धूल के नीचे देखो··· वे वहाँ छिपे हैं।" उसने धक्का देकर उसे अपने पास खींच लिया, अपनी गर्म, झुलसती साँसों के नीचे, जहाँ चाकू की धार एक मन्द, मलिन शीशे की तरह झिलमिला रही थी, जैसे उस पर एक सुर्ख, डबडबाते सूरज की छाया हो, जमीन पर फैले बेमतलब और बेलौस दुख को घेरती हुई, खुद उसकी आवाज से घिरी हुई, जो किसी अँधेरे गड्ढे से बाहर आ रही थी, एक चमकीली-सी फुसफुसाहट, जो चाकू की धार से छिलती हुई उसकी आत्मा को छील जाती थी···

वह उसे हिला रही थी—फिर वह ठहर गयी, उसे छोड़ दिया, उसकी आँखें हवा में थिर हो गयीं जैसे अचानक फिल्म खत्म होने पर आँखें खाली परदे पर ठहरी रहती हैं और हम अँधेरे से उठकर खुली और असली दुनिया में आ जाते हैं।

"तुम डर गये ?" वह हँस रही थी—उसके चेहरे को सहला रही थी। "तुम बीमार रहते हो; मैं ऐक्टिंग करती हूँ···लेकिन यहाँ कोई डर नहीं है; यहाँ सिर्फ मैं हूँ; तुम मुझसे डरते हो ?"

पता नहीं, क्यों, उसके पीले चेहरे को देखकर उसका गला रुँध-सा आया; एक अजीब-सी जिज्ञासा कलपने लगी।

"क्या यह सच है ?" उसने डरते हुए उसकी ओर देखा।

"क्या सच है ?" उसने पूछा।

"डैरी यहाँ नहीं रहते ?"

"तुम्हारा मतलब है—वे ?" उसने बाहर लान की ओर इशारा किया जहाँ दिल्ली की शान्त, नीरव रात फैली थी।

"हाँ, यह सच है।" उसने धीरे-से कहा, जैसे उसे कोई बहुत पुराना गोपनीय रहस्य बता रही हो।

"वह बिहार के गाँव में हैं···वह कभी नहीं लौटेंगे।"

"और यह डैरी ?" उसने विस्मय से उसकी ओर देखा। "यह तुम्हारे भाई नहीं हैं ?"

वह एकटक देखती रही, फिर उसे अपने पास खींच लिया, उसके होंठों, आँखों, कपोलों को चूमने लगी। "नहीं, यह मेरे भाई नहीं हैं।" उसने चुम्बनों के बीच साँस लेते हुए कहा, "वह तुम्हारी बिट्टी के लवर हैं !"

उसने उसे छोड़ दिया, चिक ऊपर उठायी, और धक्का देकर उसे बाहर

अँधेरे में धकेल दिया।

"जाओ, वे तुम्हारा इन्तजार कर रहे होंगे!"

कोई नही था। कोई इन्तजार नही कर रहा था। घास के टैरेस पर सफेद हँसिया चाँद उग आया था, जिसकी ओट मे खुद पेड़ अपनी छायाओं के साथ बँगले की दीवार मे सट गये थे। समूचा लान एक पीली रोशनी में डूबा था—जहाँ उसकी हँसी उसके पैरों के पीछे भाग रही थी, एक शिकारी जानवर की तरह उसकी आहट को सूँघती हुई, उसकी धड़कनों को अपने खुरों तले टापती हुई।

वह ठिठक गया। अपने दोनों हाथो से चेहरे को छुआ, अपने बालो को, होंठो को, होठो के बीच कटकटाते दाँतो को, जैसे उसके चुम्बनो के टुकड़े अब भी वहाँ चिपके रह गये हो, उसे लगा, जैसे उसकी आवाज अब भी उसके साथ-साथ भाग रही है, बुखार की बेचैनी मे बल खाती हुई—उसे अपने पास बुलाती हुई, रोकती हुई; मनुष्य की आवाज नही, बल्कि झाडियो की धौंकी उसाँस की तरह, जब कोई परिन्दा सहसा अँधेरे मे उड जाता है···किन्तु वहाँ कोई नही था। कोई उसके पीछे नही आया था। बँगला, झाडियाँ, पेड़ सब निःस्पन्द खडे थे। और तब एक घनी, टिपटिपाती टीस उसकी आत्मा को मथने लगी, लडकी का चेहरा बार-बार अँधेरे मे चमक आता था, उसकी वीरान अकेली आँखें, धूल मे सने बाल, किताबों के बीच डोलता चाकू···मन मे इच्छा हुई, वह उसके पास लौट जाये, कुछ कहे,—जैसे उसके और लडकी के बीच कोई सवाद हमेशा के लिए अधूरा रह गया है—

फिर खयाल आया, वह बाहर है; लड़की की दुनिया से बाहर, जहाँ सब कुछ हो सकता है; आकाश के नीचे, पेड़ो के नीचे, जहाँ से समूचा लान दिखायी देता था, पीली चाँदनी मे एक हथेली-सा खुला हुआ। हवा चलती, तो घास और पत्ते सिहरने लगते, जिसके परे पेडो का टैरेस एक रेत का ढूह जान पडता था, नीरव और स्तब्ध।

हल्की-सी खडखडाहट हुई और वह चौंक गया। कोई चल रहा था। नीचे क्यारियो मे पड़े पत्ते एकाएक चरमरा उठे। फेन्स की झाड़ियों पर एक छाया सरकती दिखायी दी। वह अपने मे कुछ कह रही थी, अँधेरे में शब्द खुलते थे और मुँद जाते थे। वह फाड़ती आँखो से देखने लगा, समझ मे नही आया, लान

के इस उजाड़ कोने में इरा कहाँ जा रही है ?

वह ठहर गयी थी। फेन्स के अन्तिम छोर पर, जहाँ बँगले की लाइट में उसका सिर दिखायी देता था, जूड़े के बाल छितरकर कानों के पास झूल रहे थे, माथा चमक रहा था और चेहरे पर एक पीली-सी शान्ति थी, एक तन्मय-सी तल्लीनता जो किसी अदृश्य आवाज को सुनने में उघड़ आयी थी।

"Will you let me go ?"

किससे पूछ रही है—कौन है वहाँ ? क्या यह उसका पार्ट है, रिहर्सल का एक टुकड़ा ? या शायद वह कुछ देर के लिए खाली है—नाटक के बीच एक खाली अन्तराल—जिसे लाँघकर वह यहाँ चली आयी थी, लान के एक कोने में, रिहर्सल की आवाजों से दूर, जहाँ उसे कोई नहीं देख सकता था ?

वह आगे बढ़ गयी, पेड़ों के पीछे छिप गयी, रात की हजार छायाओं में एक, उस टीले की ओर चढ़ती हुई, जहाँ उठा हुआ घास का मंच था, चाँदनी में झिलमिलाता हुआ, डैरी का स्टेज, जिस पर वे स्ट्रिनवर्ग का नाटक कर रहे थे।

यह असली नहीं है। पागल, देखा नहीं, यह इरा थी, और कौन हो सकता है ? वह अपने से बोल रही थी—अपने से ? वह शायद असली है, अकेले में बोलना, अपने से बोलना—तुम कुछ भी कह सकते हो। कितने सुननेवाले हैं ? पेड़, घास, झाड़ियाँ; वे बाहर हैं, लेकिन बाहर की दुनिया में वे उतने ही अकेले हैं, जितने घर के भीतर लोग। वे सब कुछ सुनते हैं।

"बिट्टी !"

वह चुपके-से पीछे आयी थी। वह छाया नहीं थी। वह असली थी। उसके हाथ···उसके कपड़ों की गन्ध; वह उसे पकड़े थी।

"तुम कहाँ थे ? मैं तुम्हें हर जगह ढूँढ़ रही थी !"

वह कुछ नहीं बोला; सिर्फ उसके हाथ को पकड़े रहा; उसे खुशी थी, वह अँधेरे में उसके चेहरे को नहीं देख सकती।

"देखो, मैं तुम्हारे लिए क्या लायी हूँ !"

खुले लिफाफे में सैंडविचेज रखी थीं, खीरा और टमाटर और चीज में लिपटी हुई।

"घर कब चलोगी ?" उसने कहा।

"बस आधा घण्टा और है···तुम ऊब तो नहीं गये ?"

वह उसे बताना चाहता था, जो कुछ उसने देखा था; फिर सहसा उसे लगा, यह धोखा होगा; उसे झुठलाना होगा, जो कुछ देर पहले उसने भोगा था। लोग

कैसे बीती हुई घटना को सामने रख देते हैं, देखो, मेरे साथ यह घटा था !

"तुम यहाँ हो !" डैरी भागते हुए आये थे, हाँफ रहे थे, "वहाँ सब तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।"

उन्होंने बिट्टी को देखा और बिट्टी ने उनका हाथ पकड़कर अपनी ओर घसीट लिया, "देखो, यहाँ कौन खड़ा है ?"

डैरी ने मुँह मोड़ा, जहाँ वह था। वह उसे देखकर कुछ इतना खुश हो गये कि उसके पास आकर उसका सिर अपने पास खींच लिया। उनकी पेटी का चमड़ा उसके गालों पर गड़ने लगा, सिगरेट और पसीना और मेहनत की गन्ध, यह सब डैरी थे और सामने बिट्टी खड़ी थी, हमें देख रही थी और तब मुझे लगा, यह शायद सुख है—डैरी से सटकर बिट्टी को देखना—यहाँ कोई खेत नहीं, न चिलचिलाती धूप, न चीलें, न चाकू, न अपने में बोले हुए अकेले, अनाथ शब्द····

यह सुख है। सुख में कोई नहीं देखता, तुम रो रहे हो।

"चलना चाहिए," डैरी ने उसे धीरे से अलग कर दिया और तब उसे लगा, सुख कितना छोटा होता है, आता भी नहीं, कि चला जाता है।

"हम अभी आते हैं···सिर्फ लास्ट ऐक्ट बाकी है।" बिट्टी ने कहा।

उसके हाथ में सैंडविचेज का लिफाफा था, वह उन्हें जाता हुआ देख रहा था। वे एक क्षण खड़े हो जाते हैं—फेन्स के पास—एक-दूसरे पर झुके हुए, कुछ कह रहे हैं, जिसे वह नहीं सुन सकता।

"तुम्हें नहीं मालूम, वे कौन हैं ?" कोई झाड़ी से फुसफुसाया है।

"वे प्यार करते हैं; वे पागल हैं; दे आर रुइनिंग देयर लाइव्स !"

रुइनिंग—नष्ट हो जाना, बरबाद हो जाना, खत्म हो जाना।

६

'उठो," उसने उसका कन्धा हिलाया, "मुन्नू, ज़रा उठ के बैठो, देखो, कौन आया है।"

वह रिहर्सल से बहुत देर रात लौटती थी। वह अक्सर सो जाता था। किन्तु उस रात उसने उसे झिझोड़कर जगाया, तो एक क्षण के लिए उसे पता नहीं चला, वह दिल्ली में है या इलाहाबाद में। दिन है या रात ? आधी रात की घुप्प नींद में विट्टी का चेहरा तैरता-सा दिखायी दिया। कौन ? कौन आया है ?

वह झपाट से उठ बैठा। बत्ती जली थी और विट्टी का बिस्तर खाली पड़ा था।

इरा मूढ़े पर बैठा थी—उसकी ओर देख रही थी।

"हमने तुम्हें जगा दिया।" उसने धीरे से कहा।

"मैं सो नहीं रहा था।" उसने झूठ बोला, "तुम कब आयीं ?"

"काफी देर पहले। हम छत पर बैठे थे।" वह थकी-सी दिखायी देती थी। उसने विट्टी के बिस्तर पर पाँव पसार लिये थे। और पैंट घुटनों तक खिंच आयी थी, पैरों में धूल से सनी चप्पलें लटक रही थीं। पास में एक लाल रंग का थैला था, जिसमें एक छोटी-सी छतरी की मूँठ बाहर झाँक रही थी।

"तुमने खाना खा लिया ?" किचन से विट्टी की आवाज सुनायी दी।

उसे उठने का बहाना मिल गया—लेकिन देह से चादर उठाते हुए सहसा उसके हाथ ठिठक गये—उसने सिर्फ एक जाँघिया पहन रखा था।

"क्या अब भी बुखार आता है ?" इरा ने पूछा—उसके स्वर में हल्का-सा लगाव था, ज्यादा नहीं, सिर्फ इतना, जिसमें लापरवाही के साथ छोटी-सी चिन्ता दबी रहती है।

"मैं अब ठीक हूँ।" उसने चादर के भीतर अपने पैर समेट लिये। फिर किचन की तरफ मुँह मोड़कर ऊँची आवाज में कहा, "मैंने सूप बना लिया था।"

बिट्टी गैस जलाने के लिए माचिस ढूंढ़ती हुई भीतर आयी—उसने मुंह धो लिया था। बालों की चोटी आधी खुलकर कन्धे पर लटक आयी थी। जब इरा ने थैले से माचिस निकालकर उसे दी, तो हल्के स्वर में पूछा—"सिगरेट तो नहीं है ?"

"तकिये के नीचे होगी—तुम नहाओगी ?"

"अभी नहीं।" फिर सिगरेट जलाकर उसकी ओर देखा, "जब सोना चाहो, तो कह देना। मैं बत्ती [illegible] दूंगी।"

वह बहुत दिनों बाद घर आयी थी, जब कभी आती, रात को बिट्टी के साथ ही सोती थी। ऐसी रातों में वह अपना बिस्तर किचन में ले जाता था। हमेशा नहीं। किसी दिन रिहर्सल देर शाम तक चलता रहता, आधी रात उसकी आंख खुलती तो देखता, वे बाहर छत पर लेटी हैं। सुबह उठकर वह अचानक बहुत खुश होता था, सोचता था, कि अब वह इरा से बातें कर सकेगा। बाहर आता तो सिर्फ बिट्टी सोती हुई दिखायी देती। दूसरा बिस्तर खाली पड़ा रहता—और तब वह जान लेता कि सुबह होते ही वह अपने होस्टल चली गयी है।

"खिड़की खोल दूं—या तुम्हें सर्दी लगेगी ?" इरा ने कहा।

"ठहरो, मैं खोल देता हूं।" वह उठ खड़ा हुआ। इस बार उसे अपने जांघिये का खयाल ही नहीं रहा। ऊपर एक बनियान पहन रखी थी। बुखार ने उसे बहुत दुबला छोड़ दिया था—लेकिन यही कारण था, कि वह अपनी उम्र से कुछ ज्यादा ही लम्बा दिखायी दे रहा था; और चेहरे पर एक पीली-सी छाया थी, जिसे बीमारी कुछ लोगों पर हमेशा के लिए छोड़ जाती है।

इरा चुपचाप सिगरेट पीते हुए उसे देख रही थी।

"तुम स्टूडियो नहीं आये ?"

वह आकर अपने बिस्तर पर बैठ गया।

"मैं आज आया था," वह धीरे-से मुसकराया। "रिहर्सल चल रहा था।"

"सच ?" इरा ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

वह हमेशा उसे आश्चर्य में डालना चाहता था, तब उसके होंठ खुल जाते थे, आंखें फैल जाती थीं और वह एकदम छोटी लड़की-सी दिखायी देता थी।

"सच—मैं आया था।"

"अच्छा बताओ, क्या देखा था ?" उसने आगे झुककर पूछा।

"बारिश हो रही थी।" उसने कहा। "बिट्टी कहीं बाहर से भीगती आयी

वह धीरे-से हँसने लगी, "और मैं ?"

"तुम ?" क्या वह कह दे, उसने उसे अँधेरे में देखा था, अपने से बोलते हुए, पेड़ों के नीचे—लेकिन फिर उसे अपने पर ही सन्देह होने लगा— वह शायद सच नहीं था—वह चाँदनी में भीगा लान, अँधेरे में चमकता हुआ चाकू—नहीं, वह कोई सपना था। पैन्थर की पदचाप की तरह, जो सिर्फ अकेले में सुनायी देती है—और ज़रा-सी आहट होते ही गायब हो जाती है।

विट्टी किचन से आयी; हाथ में दो प्लेटें थीं, माथे पर पसीने की बूँदें चमचमा रही थीं।

दोनों नीचे फर्श पर बैठ गयीं। दरवाजा खुला था। बाहर अँधेरे में मकबरे से उड़ता हुआ कोई चिमगादड़ दीवार से टकराता था—एक अजीब-सी सिरसिराहट होती थी, फिर सबकुछ सन्नाटे में लीन हो जाता था।

"तुम अब भी सोच रही हो ?" विट्टी ने एक क्षण इरा को देखा; उसके हाथ प्लेट पर पड़े थे और वह खाना भूलकर खाली आँखों से हवा में ताक रही थी। उसने जल्दी-से सिर हिलाया और फिर खाने लगी—

"तुम बेकार में घबराती हो—" विट्टी का स्वर बहुत कोमल-सा हो आया। "लन्दन कोई पास नहीं है—देखना, कल जरूर कोई चिट्ठी आयेगी।"

इरा की आँखें प्लेट पर जमी थीं, भारी और थकान में लदी।

"मैंने नित्ती से तार भेजने के लिए कहा है···"

"नित्ती भाई से ?" विट्टी की आँखें ऊपर उठीं, "वह होस्टल आये थे ?"

"जब मैं स्टूडियो से लौटी, वह दफ्तर में बैठे थे।"

"तुमने उनसे कुछ कहा था ?" विट्टी ने कुछ अजीब निगाहों से इरा को देखा।

"किसके बारे में ?"

इरा के हाथ प्लेट पर रुक गये।

"लन्दन लौटने के बारे में।"

इरा की आँखें प्लेट पर जमी थीं। कुछ देर तक विट्टी उसे देखती रही, एक निरर्थक-सी हताशा में, फिर बहुत धीमे स्वर में कहा, "इरा, यह ठीक नहीं है।"

"मुझे मालूम है···" इरा ने कहा।

इस बार विट्टी का स्वर कुछ तीखा हो आया, "मालूम है, तो तुम्हें उन्हें धोखे में नहीं रखना चाहिए।"

"धोखे में ?" इरा का स्वर सहसा तन गया। "कोई धोखे में नहीं है···मैं कुछ करूँगी, तो उनसे पूछकर नहीं करूँगी।"

वह खुद चौंक गयी, जैसे हम गुस्से और निराशा में कोई सच्ची बात कह डालते हैं, और फिर हैरानी होती है, वह सच कितना कमीना और ओछा है। उसने बेबसी में बिट्टी को देखा फिर उठ खड़ी हुई।

"कहाँ जा रही हो ?"

"मैं खा चुकी।"

वह उठ खड़ी हुई और बिना कुछ कहे किचन में चली गयी।

नल का पानी, बाहर छत की नाली में बह रहा था। पौधे नहा रहे थे। मिसेज पन्त चाँदनी रात में अपने बेंच पर बैठी ट्रांजिस्टर सुन रही थीं। कुत्ते चुप थे, अपनी मातकिन के प्रति बेखबर गहरी नींद में सो रहे थे।

इरा नहाकर आयी, तो चेहरा उज्ज्वल था। आँखें चमक रही थी। उसने बालों को खुला छोड दिया था और वे उसके गालों को छूते हुए कन्धों पर झूल रहे थे।

"बिट्टी, आज रात छत पर सोयें तो कैसा रहे ?" उसने कहा, "आज सर्दी भी नहीं है।"

बिट्टी जूठी प्लेटों को लेकर उठ खड़ी हुई।

"मैं बिस्तर बिछा देती हूँ।" उसने उसकी ओर देखा, "तुम्हें ठण्ड तो नहीं लगेगी ?"

उसकी आँखें उस पर टिक गयीं।

"मैं अपनी रजाई ले लूँगा।" छत पर सोने का मोह, आनेवाले बुखार की आशंका से कहीं बड़ा था।

वे तीनों उस रात छत पर ही सोये थे। पास-पास दरियाँ बिछा ली थीं। वह भीतर से कुशन और चादरें ले आया था। वह उन गर्मियों में पहली बार छत पर सो रहा था— दिल्ली के आकाश तले, तारों का आलोक पीली रेत-सा हर मकान की छत पर बराबर-बराबर से झर रहा था।

देर तक नींद नहीं आयी। हवा ठहरी थी। पेड़ों की फुनगियाँ खुद अपनी छाया-सी दिखायी देती थीं। सिर्फ मकबरे के गुम्बद पर कोई चिमगादड सन्नाटे को झिंझोड देता और तब अचानक पास सरकती हुई नींद चिहुँककर पीछे हट जाती, अपनी चोंच से अधकचरे सपनों को कुतरते हुए चारों ओर बिखेर देती— और वह चौंक जाता। अपने पास के बिस्तर को देखने लगता, कोई नहीं, कुछ

नहीं—और वह फिर आँखें मूँद लेता।

उसे लगा कोई छाया उठी है, छत की मुँडेर के सामने गयी है, सुराही से गिलास में पानी उँडेला है, वापिस लौटी तो इरा का चेहरा दिखायी दिया, चेहरा भी नहीं, सिर्फ एक पीला-सा आभास, वह पानी पीकर लौटी, तो लेटने के बजाय विट्टी के बिस्तर की तरफ मुँह मोड़कर बैठ गयी।

"सो रही हो ?"

"नहीं," विट्टी का धीमा स्वर सुनायी दिया।

"तुमने बुरा तो नहीं मान लिया ? मैं आजकल पागल-सी रहती हूँ।"

"सुनो, कुछ दिनों के लिए यहाँ क्यों नहीं आ जातीं ?" विट्टी ने कहा। "होस्टल में तुम्हारा मन भटकता रहता है।"

"उससे कुछ होगा नहीं। यहाँ तुम्हें परेशान करूँगी। होस्टल तभी छूटेगा, जब दिल्ली छोड़ूँगी।"

विट्टी तकिये पर कुहनी उठाकर बैठ गयी—"पता नहीं, तुम बार-बार लन्दन लौटने के बारे में क्यों सोचती हो।"

इरा अँधेरे में चुप बैठी रही।

"मैं यहाँ क्या करूँगी ?"

"तुम जब हिन्दुस्तान आयी थीं, तो कितना कुछ करना चाहती थीं।" विट्टी ने कहा।

"हिन्दुस्तान में ?" कुछ देर तक इरा का स्वर अँधेरे में टँगा रहा, "विट्टी, मैं सच कहूँ, तो इस देश के बारे में मैं कुछ नहीं जानती। मुझे हमेशा डर-सा लगता रहता है।"

"डर ?" विट्टी ने कहा, "कैसा डर ?"

"लोगों से। अपने से—" अगर डैरी न होते तो मैं थियेटर भी न कर पाती।"

"डैरी ?"

"हाँ, सच ! उनके सामने मुझे अपनी तकलीफें बहुत छोटी जान पड़ती हैं··· उन्होंने बहुत कुछ भोगा है, जिनका हमें पता नहीं है।"

"मुझे मालूम है।"

इरा ने सिर उठाया, "विट्टी, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं···" विट्टी ने कहा, "उन्हें भी तुम पर बड़ा गर्व है।"

"कैसा गर्व ?"

"इंग्लैण्ड में अपना घरबार छोड़कर यहाँ आना···ऐसा कितने लोग करते हैं ?"

"तभी वापिस जाने को कहती हूँ।" वह धीरे से हँसी। "बिट्टी! मुझे तुम पर बहुत हैरानी होती है; पता नहीं, तुम कैसे इतनी अकेले रह लेती हो, संन्यासियों की तरह।"

"अच्छा!" बिट्टी की हल्की हँसी अँधेरे में चमकने लगी। "एक बरसाती, किचन, रिकार्डप्लेयर,—इतना सुख-आराम। संन्यासिनें इस तरह रहती हैं?"

"यह नहीं।" इरा ने धीरे से कहा, "तुम अकेले रह सकती हो।"

"क्या तुम नहीं रहती?"

"अगर मैं रह सकती, तो उनके पीछे हिन्दुस्तान नहीं आती।"

किसके पीछे? अचानक उसे नित्ती भाई का चेहरा याद हो आया, उनका कमरा, बाथरूम में लटकते इरा के कपड़े वह सिहरने लगा। कुछ देर तक वे तीनों गुमसुम अपने में लिपटे लेटे रहे। कुछ देर बाद इरा की आवाज सुनायी दी—

"तुमने कभी उनकी पत्नी को देखा है?"

"नहीं?" बिट्टी कुछ चौंक-सी गयी।

"तुमने देखा है?"

"सिर्फ एक बार।"

"एक बार," उसने धीरे से कहा, "मैं कनाट प्लेस में सुपर बाजार गयी थी। वह वहाँ कैश-वाक्स के आगे क्यू में खड़ी थी। मैं भी उसके पीछे जाकर खड़ी हो गयी। मुझे बहुत अजीब-सा लगा, कि मैं उसके बारे में सबकुछ जानती हूँ जब कि वह मेरे बारे में कुछ भी नहीं जानती। जब वह दुकान से बाहर निकली, तो मैं भागकर उसे रोकना चाहती थी···"

उसने मुँह मोड लिया, जैसे साँस लेना दूभर हो, "मैं उससे माफी माँगना चाहती थी···"

"इरा, इरा···" बिट्टी उसके कन्धे को हिला रही थी। उसका मुँह तकिये में छुपा था, अँधेरे में हम दुख को सुन सकते हैं, हालाँकि दिखायी कुछ भी नहीं देता, न दुख, न आँसू, न अपने किये का पछतावा। सिर्फ तकिया हिलता है और देह सुन्न पडी रहती है। न मदद, न ममता, न पुराने दिनों की दोस्ती—कोई कुंजी काम नहीं करती।

फिर भी तुम छते हो। ताला हिलता है। दरवाजा बन्द रहता है। वह खटखटाना चाहता था। खोलना चाहता था। लेकिन वह निश्चल लेटा रहा। मार्च की रात, सेमल की गन्ध, छतों पर पड़ता तारों का आलोक···क्या खोलोगे? याद है, जब बिट्टी टालस्टाय मार्ग पर खड़ी थी। रोड-साइन पर

उसका सिर टिका था। तुम उसे हिला रहे थे—लेकिन उस दिन भी तुम बाहर थे, कुछ भी नहीं कर सकते थे। दिल्ली आने से पहले बाबू ने उससे कहा था, "देखो, तुम बिट्टी के घर जा रहे हो, वहाँ सबसे अलग रहना। बिट्टी की अपनी जिन्दगी है, अपने दोस्त—वहाँ ऐसे रहना, जैसे तुम हो ही नहीं।"

होकर भी न होना, यह आसान नहीं था; बिट्टी से बच भी जाओ, उसकी दुनिया चारों तरफ फैली थी।

"जब तुम बड़े हो जाओगे, तो दुनिया को पहचानोगे।" यह माँ कहा करती थी, जब वह जीवित थीं। अब यह जीवित नहीं हैं, और मैं दुनिया में हूँ। मैं उसे पहचानने लगा हूँ, मैं सबकुछ डायरी में लिखता हूँ। उसमें लिखते हुए मुझे उम्मीद रहती है, कि मैं इस दुनिया की रिपोर्ट उन्हें दूसरी दुनिया में दे रहा हूँ।

मुझे लगता है, मैं उनसे बातें कर रहा हूँ। उस रात उसने पहली बार अपनी डायरी को सूटकेस से बाहर निकाला था। इलाहाबाद से चलते हुए उसने दो चीजें बड़ी सतर्कता से अपने पास रखी थीं, मिशनरी साहब के संस्मरण और एक लम्बी नोटबुक, जिसे माँ ने उसे बारहवीं वर्षगाँठ पर दी थी। पहले पन्ने पर लिखा था :

Write what you see, but what you see may not be night.

यह शायद उन्होंने हँसी में लिखा था, क्योंकि देखना गलत कैसे हो सकता है? तुम देखे को न समझो, यह बात दूसरी है, लेकिन एक बार देख लेने पर दुनिया एक कीड़े की तरह सुई की नोक पर बिंध जाती है, तिलमिलाती है, लेकिन कोई उसे छुड़ा नहीं सकता। देखना तभी खत्म होता है, जब मरना होता है, और मरने पर भी आँखें खुली रहती हैं—जैसे माँ की आँखें थीं—काँच के दो कंचे—जिन पर दुनिया एक पथरायी छाया की तरह चिपकी रहती है···

किन्तु वह वही लिखता है, जो देखता है और देखते हुए उसका 'वह' धीरे-धीरे उसके 'मैं' में बदलने लगता है। डायरी का पन्ना जैसे बद्रीनाथ की यात्रा हो, एक दुर्गम चढ़ाई, जिसमें हर पत्थर, हर मोड़, हर बाधा इस 'मैं' का गवाह हो जाता है। मत सोचो, अब तुम वह हो, जो छत के नीचे सोते थे, छिपकर ड्रामा देखते थे, बिट्टी के साथ शहर में भटकते थे। अब तुम कागज पर बैठे एक अक्षर हो, अलग और अकेले, अँधेरे कोने में एक चूहे की तरह समय को कुतरते हुए, हर कतरन एक शाम है, एक घड़ी, हल्के बुखार में जड़ी हुई एक स्टिल लाइफ—बिल्कुल

स्टिल नहीं, स्मृति की साँस उसके ठहरे पानी पर बह जाती है और वह हिलने लगती है।

लोग मिलते हैं, बातें करते हैं, फिर कमरे से बाहर उठकर चले जाते हैं। रात को सोने से पहले हम भूल जाते हैं, कौन आया था, कौन चला गया। उनसे क्या बातें हुई थी, कुछ याद नहीं रहता। कुछ याद रह जाता है, जिसे मैं डायरी मे बन्द कर लेता हूँ। फिर मैं अपने लिखे को भी भूल जाता हूँ और वे घटनाएँ जो एक शाम हुई थीं, कापी के जर्द पन्नो के बीच दबी रहती हैं।

वह शाम मुझे अब भी याद है जब हम इरा के होस्टल गये थे—बिना किसी तैयारी के, ऐसे ही। हमने सोचा था, उसे बस मे बिठाकर घर लौट जायेंगे। किन्तु ऐसा नहीं हो सका। बस के आते ही इरा ने बिट्टी का हाथ पकड लिया, "क्या कुछ देर के लिए मेरे होस्टल नहीं आ सकती?" उसके स्वर मे कुछ ऐसी जबरदस्ती थी, कि बिट्टी बिना कुछ कहे बस मे चढ़ गयी—और मैं पीछे-पीछे।

मैं बहुत खुश था। मैं पहली बार इरा के होस्टल जा रहा था। बस की खिड़की से इण्डिया गेट के लान देख रहा था। दिल्ली की मुलायम धूप में नहाते हुए। मार्च की सफेद हवा पेडो के झुरमुट, सरकारी बँगले—मैं उन्हें देखता हुआ अपने बुखार को भी भूल गया—या शायद बुखार एक तपता आईना था, जिसके भीतर समूचा शहर एक धब्बे-सा चमक रहा था।

हम मण्डी हाउस पर उतर गये। पीछे एक सँकरी लेन थी, पेड़ो की लम्बी कतारों के बीच, जहाँ सफेद, क्वार्टर एक-दूसरे से सटे खडे थे। दो तरफ गहरी खाइयाँ थी, जिनके भीतर पुराने पत्ते सड़ रहे थे। आखिरी सिरे पर ईंटों की एक इमारत दिखायी दी—पेड़ों की फुनगियों के बीच छिपी हुई—जैसे अंग्रेजी जमाने मे कॉन्वेन्ट स्कूलों या मिशनरी अस्पतालों की इमारतें होती थीं। मैं आगे बढ़ने-वाला था, कि ठिठक गया। इरा ने फाटक खोला था, वह और बिट्टी भीतर जा रही थी। और तब मुझे आश्चर्य हुआ वह न अस्पताल था, न स्कूल—मैं इरा के होस्टल के सामने खड़ा था।

गेट की दीवार के पास झाडियाँ थी—बीच में लम्बे पेड़ थे, जिनकी शाखाएँ होस्टल की छत को छू रही थी। शाम की धूप में सबकुछ एक ठण्डी निश्चल रोशनी में चमक रहा था।

तीन सीढ़ियाँ चढ़कर हम बरामदे मे आ गये। सामने रिसेप्शन की एक

खिड़की थी। काउन्टर पर एक रजिस्टर रखा था—पीछे एक महिला बैठी थी, जिसका सिर्फ सिर दिखायी देता था। अगर मैं पंजों पर खड़ा होकर देखता, तो शायद उसका चेहरा भी दिख जाता—किन्तु मैं कुछ कर पाता, इससे पहले ही इरा खिड़की के आगे खड़ी हो गयी, विट्टी को कमरे की चाभी देते हुए कहा, "तुम चलो, मैं आती हूँ।"

मुझे कुछ नहीं मालूम था, कहाँ जाना है। मैं विट्टी के पीछे रास्ता टटोल रहा था। देख रहा था, कैसे लम्बे गलियारे में हर कमरे के दरवाजे पर चिकें लटकी हैं।

पीली दीवारें और काली लकड़ी की छत, कोनों में लटकते मकड़ी के जाले। कभी-कभी किसी दरवाजे के पीछे हँसी का ठहाका सुनायी दे जाता, कुछ दूर हमारा पीछा करता, फिर हम दुबारा अपने सुन्न-सूने गलियारे में चलने लगते।

अचानक एक कमरे के आगे विट्टी ठिठक गयी। दरवाजे में चाभी घुमायी, तो वह घूमती गयी—वह बन्द नहीं था और विट्टी के हाथ एक क्षण के लिए हैण्डिल पर जमे रहे। फिर हल्के से धक्का दिया, और दरवाजा खुल गया।

भीतर बत्ती जली थी। विट्टी ने पीछे देखकर उसे बुलाया और जब वह भीतर आया, तो देखा, नित्ती भाई भीतर हैं, उन्होंने पीछे मुड़कर देखा और विट्टी देहरी पर खड़ी हो गयी। वह कुछ देर चुपचाप दरवाजे की ओर देखते रहे, फिर अचानक विट्टी के पास चले आये, "इरा कहाँ है?"

"रिसेप्शन में—अभी आती है।"

वह कुछ ढीले पड़े, चेहरे पर एक मन्द-सी मुस्कराहट आयी, जैसे बोझ का एक पत्थर गिर गया हो; मेरी ओर देखा, लेकिन पास नहीं आये, न ही डैरी की तरह मेरे सिर के बालों को झिंझोड़ा—सिर्फ नीरव आँखों से मुझे देखते रहे, मानो याद कर रहे हों, मैं कौन हूँ, मुझे पहले कहाँ देखा है।

वह काले रंग का पुलोवर पहने थे। एक दिन की दाढ़ी में नीला और सफेद रंग घुल-मिल गया था। माथा बहुत पीछे तक बालों को धकेलता चला गया था—एक पीली उठान—जिस पर रेखाएँ पहिये के निशानों-सी अंकित हो गयी थीं।

"तुम कब से यहाँ हो?" विट्टी ने दुविधा में उनकी ओर देखा।

"दुपहर से···" उन्होंने कहा, "मैंने सोचा था, वह कोई नोट या चिट छोड़ जायेगी। यहाँ कुछ भी नहीं था। रिसेप्शन में पूछा, तो पता चला, वह कल दुपहर से बाहर है।"

"वह मेरे पास सोयी थी।" विट्टी ने कहा।

"मुझे फोन तो कर सकती थी।"

बिट्टी एक क्षण चुप रही, फिर धीरे-से कहा, "फोन किया था।"

"कब ? मैं कल सारे दिन घर में था।"

"कल दुपहर— रिहर्सल के बाद। तुम्हारी पत्नी ने रिसीवर उठाया था।"

बिट्टी के स्वर में कोई घबराहट नहीं थी—मानो अपनी सहजता से नित्ती भाई को दिलासा दे रही हो। वह चुप थे—इतने लम्बे आदमी—बीच कमरे में खड़े हुए—"मैं अभी आती हूँ।" बिट्टी ने कुछ खोजकर मेरी तरफ देखा, "खड़े क्या हो ? बैठ क्यों नहीं जाते ?" उसने बाथरूम का दरवाजा खोला और भीतर चली गयी।

मैं सचमुच खड़ा था, इरा के कमरे में, नित्ती भाई के साथ—बिना यह जाने— कि मैं वहाँ क्या कर रहा हूँ। बिस्तर के सिरहाने तिपाई पर टेबुल-लैम्प जल रहा था—जिसे वह शायद बुझाना भूल गयी थी। रोशनी सीधे किताबों की शेल्फ पर गिर रही थी।

मैं चौंक गया। गलियारे में पैरों की आहट सुनायी दी, दरवाजा खोलकर इरा भीतर आयी, पहले मुझे देखा, फिर हठात आँखें नित्ती भाई की ओर मुड़ गयीं, जो कोने में खिड़की के पास खड़े थे, और मुझे लगा—जैसे उसकी आँखें कुछ चौड़ी हो गयी हैं, मुस्कराहट अब भी थी, लेकिन वहाँ अब उसके चेहरे पर एक निर्जीव झाईं-सी उघड़ आयी थी—पता नहीं वह क्या भाव था, जो मैं आज भी नहीं भूल सका हूँ—*भय नहीं, लेकिन भयभीत, खुशी नहीं, लेकिन भयभीत-*सी खुशी, एक उज्ज्वल-सा विस्मय, जिसके हाशिये पर स्याही पुती रहती है।

"कब आये ?"

वह उनके पास आयी और नित्ती भाई अपनी जगह खड़े रहे। दोनों एक-दूसरे को देख रहे थे और उस 'देखने' में ऐसी रुखी बेचैनी थी, जो तीसरे आदमी को भी भेद जाती है।

"शाम को क्या करते रहे ?"

"घर में था···" वह क्षण-भर ठिठके, फिर धीमे से कहा, "मुझे पता नहीं चला, तुमने फोन किया था।"

"ऐसे ही।"

"मैं घर में ही था।"

"मुझे मालूम है।"

मुझे लगा, वे नींद में बोल रहे हैं, एक-दूसरे के पास पहुँच रहे हैं। अँधेरे

गढ़हों को लाँघते हुए, जो बीच में खुल जाते हैं, अगर दो दिन भी तुम एक-दूसरे के साथ न रहो। ऐसा हमेशा नहीं होता। सिर्फ कुछ रिश्तों में होता है। कुछ रिश्ते रेगिस्तान से होते हैं—जिन्हें हर रोज लाँघना पड़ता है।

बाथरूम का दरवाजा खुला, तो बहते पानी की गड़गड़ाहट सुनायी दी। बिट्टी बाहर आयी, तो मुँह भीगा था, तौलिये से चेहरा पोंछते हुए उसने उन तीनों को देखा···

"इतने चुप बैठे हो कि मुझे लगा, कमरे में कोई नहीं है।" वह हँस रही थी—अचानक सब ढीले पड़ गये। मैंने धीरज की साँस ली। घड़ी की टिक-टिक सुनायी दी और मुझे लगा जैसे वहीं अटका हुआ समय फिर अपनी लीक पर बहने लगा हो।

"खाने में देर है—कुछ पियोगी ?" इरा ने पूछा।

"कुछ है ?" बिट्टी ने झूठी उत्सुकता में पूछा।

"थोड़ी-सी रम है—बहुत दिनों से पड़ी है।"

"मुझे मालूम था, तुम्हारे पास जरूर कुछ होगा।" उसने कहा।

"मैंने तुमसे सीखा है—लन्दन में मैं बियर का एक गिलास भी नहीं पी सकती थी।"

वह किताबों की शेल्फ के पास गयी···जैसे वहाँ कोई छिपा खजाना हो। हर कमरे में कितने भेद-भरे कोने होते हैं, वही किताबें होती हैं, जो हर घर में होती हैं, कहीं से चाकू बाहर निकल आता है, कहीं हाथ छुआते ही एक दूसरा घर खुल जाता है, एक बोतल, गिलास, पानी का जग—घर के भीतर एक दूसरा घर, एक रोशनी, एक दरवाजा···वह उन तीनों को देख रहा है।

वे बातें कर रहे हैं। वे पी रहे हैं। बीच-बीच में वे हँसने लगते हैं···इरा ने खिड़की खोल दी है; बाहर होस्टल का बाग दिखायी देता है, बेंचों पर लड़कियाँ बैठी हैं, उनके परे पेड़ों के झुरमुट; मैं सोचता हूँ, वह एक सुखी शाम है, सुख जो अचानक चला आता है, बातों के बीच, बोतल उठाने और गिलास रखने के बीच, हँसी के टुकड़ों पर, जब बिट्टी के दोस्त सचमुच एक-दूसरे को विश्वास की निगाहों से देख रहे थे। वहाँ कोई सन्देह नहीं, न खतरा, न आनेवाले दिनों का भय—और तब सहसा अपने पुराने दिनों की डायरी पढ़ते हुए मुझे लगता है उन दिनों मैं कितना बेवकूफ था। सच कहूँ, तो मेरी बेवकूफी की हद नहीं थी। जब दूसरे लोग एक भयानक जोखिम में फँसे होते हैं, मैं बेखबर रहता हूँ। मैं सोचता हूँ, वे पी रहे हैं और बोल रहे हैं। एक कमरे में साथ बैठे हैं, तो सबकुछ ठीक है,

जैसे अस्पताल के कमरे मे माँ चुपचाप लेटी रहती थी और मुझे देखते ही मुस्कराने लगती थी और मैं सोचता था, वह ठीक है। ठीक कुछ भी नही होता — यह मुझे बाद मे पता चलता है, बल्कि जब चीजें सबसे ज्यादा बिगड़ी होती हैं, तभी मुझे यह सुखद उम्मीद बँधने लगती है, कि वे सबसे ज्यादा ठीक हैं। जब मैं इलाहाबाद में था तो कभी-कभी किसी फिल्म को दुबारा देखने जाता था और तब मुझे काफी हैरानी होती थी कि पहली बार मैंने कितनी चीजो को अनदेखा कर दिया था, दरवाजे का खुलना, एक खाली दीवार, किसी लड़की का खिड़की से बाहर झाँकना, घडी का डायल, मुझे यह चीज काफी भयंकर जान पड़ती— देखकर भी न देख पाना—जैसे मैं कही बीच-बीच मे मर जाता हूँ। खास उन जगहों पर, जहाँ असली सत्य छिपा रहता है—और क्योकि मैं अपने मरने की याद नही करना चाहता था—मैंने फिल्मों को दुबारा देखना छोड़ दिया। मैं अपने भीतर यह भ्रम पालने लगा कि जो मैंने पहली बार देखा है, वही अन्तिम है और सम्पूर्ण है, वही सत्य है। तुमने सबकुछ देख लिया, मैं अपने से कहता था, और जो कुछ नही देखा, वह भ्रम और भुलावा है। वह धोखा है। वह कुछ भी नही है।

मैं उन दिनो दस बरस का रहा हूँगा। फिर बहुत से साल गुजर गये और मैं दिल्ली चला आया, फिल्मों की जगह मैं बिट्टी के दोस्तो को देखने लगा। वे आते थे और चले जाते थे। वे ठहर जाते थे और मैं उन्हे वैसे ही देखता था, जैसे यह एक थियेटर हो और इसमे कोई शर्म और छिछोरापन नही था, क्योकि वे जानते थे कि मैं उन्हें देख रहा हूँ। सच पूछो, तो कुछ देर बाद उन्हें ध्यान भी नहीं रहता था कि वे मेरे सामने हैं और मैं उनके बीच हूँ जैसे—मेज और किताबो और गिलास, खिड़की और पेड़, स्ट्रिनबर्ग और चेखव के नाटक—वैसे मैं। उनके बीच और उनके बाहर···

बिट्टी मुझे भूल-सा गयी थी—और जब इरा ने हँसी-हँसी मे थोड़ी-सी रम मुझे दी, तो भी वह कुछ नही बोली जैसे उसका मुझसे कोई वास्ता न हो। लेकिन मुझे उसकी परवाह नही थी और मुझे अच्छा लग रहा था कि मैं उनमे से एक हूँ और पी रहा हूँ और जब एक बार निक्की भाई ने हँसी में कहा कि मैं बिट्टी का 'रमी कजिन' हूँ तो मुझे कुछ विचित्र-सा लगा कि वे इतने छोटे-से मजाक पर इतना हँस सकते हैं, इतना खुश हो सकते हैं—लेकिन यह भी सम्भव है कि मैं गलत हूँ क्योकि उस शाम मैं नशे की धुंधली फिल्म में उन्हें देख रहा था। मैं बुखार में था और वे मेरे पास थे। मैं उन्हे छू सकता था। मैं उनके बीच से गुजर जाता था मानो वे धुन्ध हों लेकिन वे ठोस थे, साफ—और तब मुझे याद आया,

मैंने उन्हें ऐसे नहीं देखा था। बुखार का असर था, या पहली बार पीने का—
—मुझे लगा, वे मेरे बहुत पास सरक आये थे। वे अकेले नहीं थे। कुछ अदृश्य-सी चीज उनके साथ जुड़ गयी थी, लेकिन वे उसे नहीं देख सकते थे। जब नित्ती भाई अपना गिलास उठाते तो मुझे लगता जैसे यह गिलास, ये अँगुलियाँ किसी दूसरे आदमी की हैं, जो उनके पीछे बैठा था—इरा की आँखें नित्ती भाई पर नहीं, उस आदमी पर टिकी हैं और यह आदमी सुरक्षित नहीं है,···फूंक मारते ही उसे उड़ा दिया जा सकता है, नष्ट कर दिया जा सकता है। मुझे यह असह्य-सा जान पड़ा, कि नित्ती भाई को, इरा और बिट्टी को—किसी को इसका गुमान नहीं है कि वे कितने बड़े खतरे में हैं, मैं उनसे कुछ कहनेवाला था कि सहसा मुझे बिट्टी का स्पर्श महसूस हुआ, वह गिलास पर मेरे हाथ पर अपना हाथ रखे थी। वह मुस्करा रही थी, "ठीक हो ?"

"हाँ," मैंने कहा। मैं वह रहा था जबकि वे एक जगह बैठे थे। मुझे अब उनकी चिन्ता नहीं थी। मुझे अचानक पता चला, कि मेरे भीतर बहुत घनी शान्ति है। मैं उसे तोड़ना नहीं चाहता था।

अचानक इरा उठ खड़ी हुई। गलियारे में डिनर की घण्टी गूंज रही थी।

"मैं अभी आती हूँ।" इरा ने कहा।

"तुम चल तो लोगी ?" बिट्टी ने हँसते हुए कहा।

"मेरी रम अब भी बाकी है।" इरा ने सबको देखा—"मैं तुम्हारे लिए खाना पैक करा लाती हूँ।"

"मेरे लिए नहीं—मैं अब जाऊँगा ?" नित्ती भाई ने कहा।

इरा ने एक क्षण उन्हें देखा—कहा कुछ नहीं—और फिर दरवाजा खोलकर बाहर चली आयी।

उसके बाद जो कुछ हुआ, धुएँ की लकीर-सा मुझे याद है। कुछ शब्द, कुछ फिकरे दिमाग के किसी कोने में फँसे हैं—फटी हुई चिट्ठी जैसे—जिसकी चिप्पियाँ जोड़-जोड़कर पढ़नी होती हैं। मेरी आँखें मुँद रही थीं, लेकिन मैं सो नहीं रहा था। एक हल्की-सी धुन्ध में तैर रहा था। कभी-कभी गिलास के खनकने, पानी उँड़ेलने की आवाज मुझे चौंका देती थी, आँखें खुल जातीं—देखता, नित्ती भाई कभी अपने, कभी बिट्टी के गिलास में रम डाल रहे हैं—कहीं दूर से उनकी आवाज सुनायी देती थी और मैं उसके पीछे-पीछे चला जाता था, बिना यह परवाह किये, कौन बोल रहा है, कौन सुन रहा है। किन्तु एक बार मैं रुक गया, जैसे बातों के बीच कोई एक वाक्य अलग हो गया हो और उसने बीच में

मुझे पकड़ लिया हो।

"तुम सोचती होगी, मैं कैसा आदमी हूँ।"

नित्ती भाई ने गिलास से सिर उठाया—

"मैं उसे जाने से रोक रहा हूँ, पर खुद वहीं हूँ, जहाँ पहले था।"

"तुम्हारी पत्नी हैं," बिट्टी ने धीरे से कहा। "और बच्चे।"

"यह नहीं।" उन्होंने गिलास से एक घूंट लिया, "मुझमें हौसला नहीं है।"

बिट्टी की आँखें ऊपर उठीं, "हौसला किसमें है?"

"क्यों, तुममें है और डैरी···"

"डैरी?" बिट्टी के होंठ एक विचित्र-सी मुस्कराहट में खुल गये। "मैं उन्हें जानती हूँ।"

"बिट्टी! क्या बात है?"

वह हँसने लगी, ऐसी हँसी, जो उसने पहले कभी नहीं देखी थी, जैसे कोई डूबते हुए ऊपर आ जाता है, पानी के अँधेरे से दिन की रोशनी को देखता है।

"नित्ती भाई, तुमने कभी कुछ सोचा है?"

"किसके बारे में?"

"तुम इंग्लैण्ड से क्यों लौट आये? तुम हम लोगों को नहीं देखते, जो यहाँ रहते हैं?"

नित्ती भाई कुछ देर तक चुपचाप अपने गिलास को देखते रहे; फिर एक लम्बी साँस ली, जिसमें पता नहीं, कितना बोझ लदा था।

"बिट्टी, तुम सबकुछ छोड़कर यहाँ पड़ी हो। किसके लिए? हिन्दुस्तान में कितने लोग ऐसा करते हैं?"

बिट्टी की आँखें खाली हवा पर ठिठक गयीं, फिर बहुत हल्के स्वर में बोली, "हिन्दुस्तान में कोई कुछ नहीं छोड़ता; मैंने कुछ नहीं छोड़ा · पहले मैं बाबू के घर रहती थी, अब यहाँ बरसाती में···और डैरी? वह अपने पिता के बँगले में रहते हैं; हम वही किताबें पढ़ते हैं, जो दूसरे लोग, वही बातें करते हैं···मैंने जब इलाहाबाद छोड़ा था, तो सोचा था कि अब मैं छोटी-छोटी चीजों के घेरे से बाहर आ जाऊँगी···" वह धीरे से हँस पड़ी, "अब मैं बड़ी चीजों के बीच में हूँ···लेकिन मैं उतनी ही छोटी हूँ, जितनी पहले···मेरे भीतर कुछ भी नहीं बदला है!"

"ऐसा नहीं है—बिट्टी!" नित्ती भाई ने अपना हाथ धीरे से बिट्टी के हाथ पर रख दिया, "जानती हो, जब कभी मैं तुम्हें रिहर्सल करते हुए देखता हूँ, तो तुम बिल्कुल बदल जाती हो···मुझे विश्वास नहीं होता, तुम वही हो, जिसे मैं

जानता हूँ !"

विट्टी की आँखों में एक असाधारण-सी चमक उमड़ आयी···बुखार की धुन्ध में मुझे लगा, जैसे यह चमक देह के किसी ऐसे परदे को छानते हुए आयी है, जो सिर्फ दुर्लभ क्षणों में उठ जाता है···

उसने बहुत कोमल निगाहों से नित्ती भाई को देखा और फिर अपने को दबाते हुए कहा, "हाँ— ऐसा होता है ! स्टेज पर कभी-कभी लगता है, मैं वह नहीं हूँ, जो अपने को समझती आयी थी···मुझे कुछ ऐसा भ्रम होता है, जैसे मैं अपने बारे में कुछ ऐसा जान गयी हूँ, जो किसी को नहीं मालूम, जैसे···जैसे कोई दरवाजा खुल गया है जहाँ से मैं गुजर सकती हूँ···नित्ती भाई, मैं समझा नहीं सकती···बाद में मुझे कुछ भी याद नहीं रहता; क्या ऐसा असली जिन्दगी में नहीं हो सकता ?"

"हो सकता है, विट्टी !" नित्ती भाई ने धीरे से कहा, "डैरी वहीं गये थे···"

विट्टी एक लम्बे क्षण तक खिड़की के बाहर देखती रही, जहाँ पेड़ों की छायाएँ अँधेरे में स्तब्ध खड़ी थीं।

"हाँ, डैरी गये थे···और वह लौट आये। हममें से कोई भी वहाँ ज्यादा देर तक नहीं रह सकता।"

नित्ती भाई ने उसके गिलास की ओर देखा, पहली बार शायद अहसास हुआ कि वह बहुत पी चुकी है, लेकिन वह स्वयं इतना आगे जा चुके थे, जहाँ दूसरों को रोकना बेमानी-सा जान पड़ता है।

मैं बहुत देर तक उन दोनों को देखता रहा—दो चेहरे, प्रकाश की पीली छाया में सिमटे हुए—फिर सहसा विट्टी की आँखें दिखायी दीं, नित्ती भाई के चेहरे पर गड़ी हुई।

"तुम क्या सचमुच उससे प्यार करते हो ?"

"तुम क्या सोचती हो ?"

"मैं सोचती हूँ—तुम कुछ करते क्यों नहीं ?"

"विट्टी···तुम्हें सबकुछ आसान लगता है।"

"अपने बच्चे को छोड़ना ?" विट्टी ने कहा, "या अपनी पत्नी को ?"

नित्ती भाई सुन्न आँखों से उसे देखते रहे फिर बहुत धीमे स्वर में कहा, "तुम्हें कुछ नहीं मालूम···तुम अपने से बाहर कुछ भी नहीं देखतीं।"

"मुझे इतना मालूम है, वह कितना तड़पती है। तुमने···तुमने कभी···"

वह नशे में बोल रही थी। वह हकला रही थी। वह एक ऐसी जगह पहुँच गयी थी जहाँ दुःख का नाम दुख है, डर का नाम डर, प्रेम का नाम प्रेम···।

"क्या कुछ भी नहीं हो सकता ?" इस बार बिट्टी ने अजीब भयभीत आँखों से नित्ती भाई को देखा।

"मैं कोशिश करता हूँ, लेकिन हर बार पीछे हट जाता हूँ।"

बिट्टी फटी-फटी आँखों से नित्ती भाई को देखने लगी—फिर एक भयानक-सी मुस्कराहट उसके चेहरे पर फैल गयी।

"जानते हो, यह किसने कहा था ?"

"किसने ?"

"इसकी माँ ने···"

"बिट्टी !" मैंने उसे रोकना चाहा, पर उसने मुझे देखा भी नहीं।

वह अचानक किसी दूसरे समय में, किसी पुराने दिनों की सुरंग में चली गयी थी; कुछ देर बाद जब उसका स्वर सुनायी दिया, तो लगा जैसे वह सोते हुए बोल रही हो—

"मैं आखिरी बार उन्हें देखने गयी थी···अस्पताल के कमरे में···मौसी, क्या हाल है, मैंने पूछा। बहुत देर तक वह मुझे निहारती रही, फिर मुझे अपने पास बुलाया, धीरे से कान में कहा, मैं कोशिश करती हूँ···"

बिट्टी, चुप ईश्वर के लिए·· फिर सहसा मैं रुक गया—वहाँ न ईश्वर था, न माँ की यातना थी—

सिर्फ बिट्टी के आँसू थे—और वह रोना नहीं था—क्योंकि रोना वर्तमान में होता है, जबकि बिट्टी के आँसू किसी पुराने रोने के बासी अवशेष थे, जो इस क्षण बाहर निकल आये थे, बह रहे थे और वह उन्हें बहने दे रही थी।

नित्ती भाई कुर्सी से उतर आये, बिट्टी के साथ फर्श पर बैठ गये, उसके हाथ से रम का गिलास छुड़ा लिया—वह शायद कुछ कहना चाहते थे, किन्तु उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था, कैसे अपनी पीड़ा के दलदल से उबरकर उस दायरे में जा सकें, जहाँ बिट्टी थी; अगर उस समय कोई 'घटना' हो जाती, तो वह अधूरा दृश्य एक मुकम्मिल-सी परिणति पा लेता, जैसा कि उसने थियेटर में देखा था, परदा गिर जाता है और दुःख चाहे कितना ही भयानक और असह्य क्यों न हो, अगले ऐक्ट के शुरू होने तक एक रिलीफ-सी पा लेता है, पीड़ा को हाथ-पाँव फैलाने का एक सिरहाना-सा मिल जाता है—लेकिन यह रिलीफ जीने के दौरान नहीं मिल सकती क्योंकि जब हम सचमुच जी रहे होते हैं—

शाम, होस्टल के कमरे में, बुखार और रम और पछतावे के पसीने में
लिथड़े हुए —तो कहीं परदा नहीं गिरता, एक क्रूर, पथरीली-सी
अपने जबड़े फैलाये रहती है; एक मन्द बुखार की तरह, जिसमें मैं तपता
उन्हें देख रहा था।
कुछ भी नहीं हुआ···कुछ देर बाद इरा ने दरवाजा खोला, वह हाँफ रही
वह दौड़ती हुई आयी थी। उसने खाने का पैकेट अपनी छाती से चिपका
ा था। वह मुस्करा रही थी।

हम बाहर आ गये। खुली, स्वच्छ रात के अँधेरे में। मेरी आँखें मुँद रही थीं।
मैंने पहली बार शराब पी थी और मुझे लग रहा था जैसे मैं हवा में चल रहा
हूँ। नित्ती भाई मेरे साथ थे और उन्होंने मेरा हाथ पकड़ रखा था।
मैं उनसे कुछ कहना चाहता था—डर के बारे में। मैं उनसे कहना चाहता
था कि उन्हें डरना नहीं चाहिए। मैं उन्हें सान्त्वना देना चाहता था। शायद
रम पीने का असर रहा होगा, जब ऊपर तारों के बीच अँधेरे में मैं उनके दुख को
भी चमकता हुआ देख सकता था—एक चमकीला कीड़ा—जो भीतर रेंगता है,
खाता है, सबको डराता है। वह उसे मार सकते हैं, खत्म कर सकते हैं—मैं
उनसे कहना चाहता था—लेकिन वह ठहर गये। वह बीच सड़क पर खड़े हो
गये। उन्होंने मेरा हाथ छोड़ दिया। मैंने सोचा, वह शायद नाले में पेशाब करने
जा रहे हैं, इसलिए मैं पीछे खड़ा रहा। किन्तु वह एक पेड़ के पास गये और
अपना सिर उसके तने पर टिका दिया। वह वहाँ अँधेरे में पेड़ पर सिर टिका
खड़े थे। मैं उनके पीछे गया, पर उन्होंने मुझे नहीं देखा। वह पीछे भी न
मुड़े—एक भूत की तरह पेड़ से चिपके खड़े रहे। पीछे इरा और विट्टी
रही थीं···मैं वही खड़ा-खड़ा प्रार्थना करने लगा कि वे कहीं उन्हें इस हाल
न देख लें। मैं उन्हें हिलाने लगा। मैं उन्हें पीछे की तरफ खींचने लगा
जैसे सो रहे थे, इतने पेड़ों के बीच एक पेड़ की तरह।
मैंने उन्हें छोड़ दिया। कोई फायदा नहीं था। मैं बस-स्टैंड की तरफ
लगा। हवा उठ रही थी। मण्डी हाउस का स्कैयर उजाड़ पड़ा था।
का एक झीना छिलका मेरे ऊपर लटक आया था···लाखों तारों का
हुआ आलोक—जो हर पत्ते पर बारिश की बूंदों की तरह चमक रहा
बस ठहरती है—लोग भीतर आते हैं—घण्टी बजते ही वह

लगती है। कण्डक्टर सोया-सा कुछ पूछता है, और बिट्टी का चेहरा आगे की तरफ झुक जाता है—जैसे वह भी सोकर जागी हो—दो टिकट निजामुद्दीन। ईस्ट या वेस्ट ? हार्डिंग ब्रिज की रोशनियाँ, पुराना किला, मकबरे, खण्डहर। कण्डक्टर ठिठका-सा खड़ा रहता है—दूसरा टिकट किसका है ?

मेरा। मैं यहाँ हूँ, मैं बाहर देख रहा हूँ। सबकुछ पीछे भाग रहा था—रोशनी के खम्भे, पेड़, तारे। मैं बस की खिड़की से दिल्ली की बहती दुनिया को देख रहा था। बिट्टी पीछे बैठी थी, लेकिन खिड़की के शीशे पर मैं उसका चेहरा देख सकता था—रोशनी का धब्बा—एक फ्रेम में जड़ा हुआ—और मुझे भ्रम होता था जैसे बिट्टी भीतर नहीं, कहीं बाहर अँधेरे में बैठी है, किसी गुजरते मकान की खिड़की से मुझे देख रही है। मुझे खुशी हुई, हम अलग-अलग बैठे हैं—अलग पर अकेले नहीं। जिन लोगों को हमने मण्डी हाउस के बस-स्टैण्ड पर छोड़ दिया था, वे अब भी कहीं बाहर थे ' इरा अब भी बस के पीछे भाग रही थी खाने का टिफिन बिट्टी को देने के लिए, जो भूले में उसके हाथ में रह गया था, उसके हाथ हैंडिल पर चिपक गये थे, नित्ती भाई ने जबर्दस्ती उसे पीछे खींचा और वह हकबकायी आँखों से हमारी बस को देखती रही—अँधेरे में बीच सड़क पर।

क्या वह अब भी वहाँ खड़ी है ? क्या ऐसा हो सकता है कि जब मैं बरसों बाद वापिस लौटूँगा, वह वहीं खड़ी होगी, एक लम्बी छरहरी लड़की, काली शाल में लिपटी हुई। नहीं, यह असम्भव है, मैंने सोचा। लोग पेड़ नहीं है जो एक जगह खड़े रहें, और पेड़ भी मुरझा जाते हैं—the woods decay and the woods decay—मुझे बरसों पहले पढ़ी हुई एक लाइन याद आती है और तब मुझे काफी अजीब लगा कि जंगल भी जरजरा जाते हैं, बूढ़े हो जाते हैं, झर जाते हैं···।

७

वे लम्बी दुपहरें थीं। वह सुबह ही बाहर निकल जाता। मकबरे के बाग में लेट जाता - ऊपर चीलें उड़ती रहतीं, नीचे पत्ते सिर धुनते रहते। सारा शहर एक अदृश्य काली सुई-सा घूमता, मार्च से उतरकर अप्रैल की चढ़ाई पर चढ़ने लगता; और तब उसे लगता (मकबरे की घास पर लेटे आकाश को ताकते हुए) जैसे समय कोई ऊँचा पहाड़ है, और सब लोग अपनी-अपनी पोटलियों के साथ ऊपर चढ़ रहे हैं—हाँफ रहे हैं, बिना यह जाने—कि ऊपर चोटी पर—वे सब हवा में गायब हो जायेंगे—और धूल में लदी-फँदी पोटलियाँ—पता नहीं, उनमें क्या भरा है, प्रेम, घृणा, निराशाएँ, दुख—नीचे लुढ़का दी जायेंगी, जिन्हें दूसरे लोग पकड़ लेंगे और फिर उन्हें पीठ पर ढोते हुए ऊपर चढ़ने लगेंगे···

क्या यह सिलसिला कभी खत्म नहीं होगा ?

शाम होते ही शहर का सन्नाटा मकबरे पर उतर जाता—और वह घर की तरफ चलने लगता। खाली घर, धूल-भरी मुँडेर, साँकल पर कागज की चिन्दियाँ फड़फड़ाती हुई उसका स्वागत करतीं "मैं रिहर्सल में हूँ," दूसरा कागज "मैं आयी थी, तुम कहाँ थे ?," तीसरा कागज "खाना खा लेना, मैं देर से लौटूंगी।"

वे लम्बी दुपहरें थीं। धूप और धूल और पीला अवसन्न आकाश; किन्तु स्टूडियो के भीतर ठण्डा अँधेरा तसल्ली देता था। वह वहाँ अपने को सुरक्षित-सा महसूस करता था। दरवाजे के सूराख से रिहर्सल देखता तो दुनिया बदल जाती और समय ठहर जाता। इरा स्टेज पर आती, तो एकदम शान्त और सम्पूर्ण दिखायी देती, जैसे उसने सचमुच अपनी 'पोटली' थियेटर के बाहर छोड़ दी हो—स्टेज पर खड़ी वह और बाहर बहता हुआ समय एक हो जाते—और वह सोच न पाता, यह वही लड़की है जो उस रात छत के अँधेरे में रो रही थी। नहीं, यह कोई दूसरी आत्मा थी, जो इरा की देह से बाहर झाँक रही थी, उसे सुलाकर खुद बाहर चली आयी थी—स्टेज के मद्धिम प्रकाश में एक नंगी, साफ लौ की तरह जलती हुई—लेकिन क्या आत्मा वही रहती है ? यही,

तो पुनर्जन्म है, कोई उसके भीतर कहता—एक ही जिन्दगी में दूसरी जिन्दगी। थियेटर के ग्रीन-रूम में अपनी देह उतारकर दूसरी देह पहन लेना'' जैसा बाबू गीता में उसे सुनाते थे'''

गीता नहीं बेवकूफ—स्ट्रिनबर्ग। वह स्ट्रिनबर्ग का नाटक था। उसमें दो औरतें थीं और एक आदमी, जिसका पार्ट कोई बहुत लम्बा-सा लड़का करता था। तीनों एक जगह फंसे थे, जिसे नेकीराम जू का पिंजरा कहता था। वह म्यूजिकल में उसके पीछे बैठा रहता और जब कोई सीन बदलता, तो वह उसका कन्धा झिंझोड़कर फुसफुसाने लगता।

"देखो, अब बिट्टिया का पार्ट होगा।"

वह चौंक जाता। आंखें फाड़कर देखने लगता—बिट्टी एक विंग से बाहर निकलकर आती—और एक क्षण अंधेरे खाली आडिटोरियम को ताकती रहती—और तब उसे बहुत निराशा होती कि बिट्टी स्टेज पर भी बिट्टी दिखायी देती है, उसकी इलाहाबादी कजिन—रूखे बालों का जूड़ा और पीला माथा, मुसी हुई जीन्स पर खद्दर का ढीला-ढाला कुरता—सिर्फ आंखें कुछ बदल जातीं, किसी क्रूर गोपनीय रहस्य में चमकती हुईं—क्रूर और पत्थर जैसी कठोर—और जब वह ऊंचे, फूत्कारते स्वर में कुछ कहती तो वह उस स्वर की अंधेरी जड़ों में चला जाता, एक रस्सी की गांठ, जो उसके स्वर को खींचते हुए किसी कुएं में ले जाती और तब उसे लगता, जिस बाल्टी को स्ट्रिनबर्ग ने बरसों पहले अपने भीतर फेंका था, बिट्टी का स्वर उसकी पीड़ा को लबालब अपनी चीख में उड़ेल लाता है।

उसका दिल तेजी से धड़कने लगता। दरवाजे पर चिपकी आंख मुंद जाती। पागल, बेवकूफ यह नाटक है, कोई झाड़ियों के पीछे फुसफुसाता हुआ कहता। इसमें असली कुछ नहीं है। यह एक माया है, एक मिराज, जो रेगिस्तान में पानी की तरह चमकता है, होता कुछ नहीं। बरसों पहले नाटक के लेखक ने इस चीख को अपने भीतर सुना होगा, किसी दुपहर अपने अकेले कमरे में; उसी की गूंज अब तक चली आती है—यह असली नहीं है, इसका यथार्थ से कुछ लेना-देना नहीं, यह झूठ का झिलमिला है, वैसे ही, जैसे बरसों पहले फड़फड़ाते चीथड़ों के बीच तुमने उस बौने को देखा था क्या उसका 'सुख' भी धोखा था?

लेकिन वह दुपहर असली थी, जिसे वह आज तक नहीं भूल पाता। वह अपने तहखाने में बैठा था—तभी उसे आडिटोरियम में हल्की-सी खड़खड़ाहट सुनायी दी। उसने सोचा, शायद डैरी होंगे। वह कभी-कभी आडिटोरियम की पिछली सीट पर आकर बैठ जाते थे—और वहीं से एक्टरों को आदेश देते रहते

थे। लेकिन उस दुपहर जो आदमी पिछली सीट पर बैठा दिखायी दिया—उसे एक क्षण विश्वास नहीं हुआ, कि वह नित्ती भाई हो सकते हैं। वह नित्ती भाई ही थे। उन्होंने शेव भी नहीं की थी। कमीज के कालर मुड़े हुए थे और उन्होंने वही खाकी हाफ पैन्ट पहन रखी थी, जूते और मोजों के साथ। मुँह थोड़ा-सा खुला था, जैसे साँस लेना मुश्किल हो।

वह आडिटोरियम में अकेले बैठे थे। वहाँ उन्हें कोई नहीं देख सकता था। लेकिन वह अपने सूराख से उन्हें देख रहा था। रोशनदान का चौकोर, रोशनी का चकत्ता उनके बालों पर गिर रहा था, चाँदी के छल्ले की तरह, उन्हें दो फाँकों में काटते हुए—एक आदमी, जिसका घर था और पत्नी थी—दूसरे एक प्रसिद्ध आर्किटेक्ट, जो अँधेरे आडिटोरियम में बैठे थे, जेब से बोतल निकालकर पी रहे थे और वह अपना होश-हवास खोकर दरवाजे की आँख से देख रहा था···जब वह बोतल ऊपर उठाते, काँच का एक टुकड़ा छत पर नाचने लगता, उसकी आँखों को भेदने लगता और तब उसे याद आया, कैसे कुछ लोग धीरे-धीरे मदद के बाहर हो जाते हैं, जैसे माँ हो गयी थीं, जो घण्टों बदहवास-सी बिस्तर पर लेटी रहती थीं, असीम कष्ट में छटपटाती हुई और वह उन्हें वैसे ही देखा करता था, जैसे इस क्षण—दिल्ली की एक दुपहर—नित्ती भाई को देख रहा था; उन्हें कोई मदद, कोई उम्मीद नहीं थी। ऐसे लोग उम्मीद को भी पार कर लेते हैं और उन्हें वह सौभाग्य भी नहीं मिलता, जो कम-से-कम नाटक के ऐक्टरों को मिल जाता है, जो किताबों में है, जिन्हें बिट्टी के दोस्त पढ़ते थे—गीता में है, जिसमें डूबकर बाबू माँ की मृत्यु को भूल जाते थे; वह उस रिकार्ड में था, जिसके भीतर से नीग्रो लड़की की फटी-फटी आवाज़ बाहर आती थी···

वह अपने को नहीं रोक सका। झपाट से क्यूविकल का दरवाजा खोला और आडिटोरियम में चला आया। वहाँ कोई नहीं था। नित्ती भाई कब के जा चुके थे। उनकी सीट खाली पड़ी थी। अँधेरे में सिर्फ ह्विस्की की बासी गन्ध तैर रही थी।

अब कोई अँधेरा नहीं था। वह धूप में चल रहा था। वह दुपहर के उजाले में आ गया था। अब कोई नहीं था, न थियेटर, न माया, न अफसोस। यह असली दुनिया थी। वह अप्रैल का दिन था। वह पेड़ों के नीचे चल रहा था और पेड़ असली थे। और उनकी छायाएँ सड़क को लाँघकर बँगलों तक जाती थीं।

उसने मण्डी हाउस का स्क्वेयर पार किया और भगवानदास रोड पर चला आया। कभी-कभी वह रुक जाता। ठहर जाता। सुनने लगता। दिल्ली भी कैसा शहर है। वह सोचने लगता। लाल ईंटों के बंगले, हवा में काँपते टेलीविजन के पोल, परदे, परदों के पीछे लोगों की अज्ञात जिन्दगी—जिसे वह कभी नहीं जानेगा।

वह चलता रहा और फिर बन-स्टैण्ड पर आकर रुक गया। सब बसें निजामुद्दीन होकर जाती थीं। एक हरा गुंबद और इक्के-दुक्के यात्री—हार्डिंग ब्रिज पर जब कोई ट्रेन गुजरती, तो धुएँ की लहर उड़ती हुई आ जाती। पीछे बंजर मैदान था। कुछ सोये हुए खण्डहर और आधी टूटी दीवारें, जहाँ बच्चे उड़ते थे। पुराने किले का चक्कर लगाकर वापिस मुड़ते थे—नुमायश के मैदान पर उतर जाते थे।

वह उन्हें देख रहा था। एक दिन बिट्टी के साथ यहाँ आयेगा, बहुत देर तक घूमेगा। इलाहाबाद में कोई ऐसा मैदान नहीं था, जहाँ नुमायश बीत गयी हो और फिर भी खड़ी हो, कायम हो, अपनी जगह जमी हो—पुरानी दुकानों के स्टॉल, टॉवर, धूल में सने खोखल—कंकाल। बाहर से सादुल और टोन, भीतर जाओ, तो खाली, बासी हवा, और कुछ भी नहीं। खाली और सुनसान—जिस तरह कुछ कब्रें जमीन में धँस जाती हैं, घास उग आती है। बच्चे उस पर खेलते हैं और किसी को याद भी नहीं रहता कि भागते पैरों और मरसरी घास के नीचे कोई दबा है, लेकिन अचानक किसी दिन कोई उखड़ा पत्थर पाँवों में घुस जाता है, एक चेहरा बाहर झाँकता है, देखो, मैं वही हूँ, जो तुम्हारे साथ आयी थी। जनवरी के दिन, जब इलाहाबाद में नुमायश शुरू हुई थी और मेरे इम्तहान पास आ रहे थे···तुम्हें याद है?

उसे याद है। वह उसे घसीटकर लाया था। वह आती नहीं थी। वह महीनों कमरे में पड़ी रहती थी। वह उसे किताबों से खींचकर बाहर लाया था। उसने कपड़े भी नहीं बदले—जैसी थी, वैसी ही उसके साथ चली आयी थी—इस एक शर्त पर—कि वे एक घण्टे में घर लौट आयेंगे। वह मान गया था क्योंकि बदले में बिट्टी ने उसे यह तसल्ली दी थी कि वे रिक्शा से जायेंगे और रिक्शे के पैसे वह देगी।

कैसे याद किया जाता है? आँखें मूँदकर वह दो बरस के अँधेरे को लाँघ गया—और एक टापू पर उतर आया—जहाँ सिर्फ रोशनियाँ थीं, रोशनियाँ और हवा में उड़ते गुब्बारे और अँधेरे में घूमता हुआ जायन्ट व्हील, एक लाल सुर्ख सितारा, जिस पर बच्चों की हँसी और चीखें गूँज रही थीं। नुमायश के बीच बड़े मैदान में एक बैण्ड मास्टर बेंत घुमाता हुआ चल रहा था—पीछे बैण्ड बजाते हुए

थे। लेकिन उस दुपहर जो आदमी पिछली सीट पर बैठा दिखायी दिया—उसे एक क्षण विश्वास नहीं हुआ, कि वह नित्ती भाई हो सकते हैं। वह नित्ती भाई ही थे। उन्होंने शेव भी नहीं की थी। कमीज के कालर मुड़े हुए थे और उन्होंने वही खाकी हाफ पैन्ट पहन रखी थी, जूते और मोजों के साथ। मुँह थोड़ा-सा खुला था, जैसे साँस लेना मुश्किल हो।

वह आडिटोरियम में अकेले बैठे थे। वहाँ उन्हें कोई नहीं देख सकता था। लेकिन वह अपने सूराख से उन्हें देख रहा था। रोशनदान का चौकोर, रोशनी का चकत्ता उनके बालों पर गिर रहा था, चाँदी के छल्ले की तरह, उन्हें दो फाँकों में काटते हुए—एक आदमी, जिसका घर था और पत्नी थी—दूसरे एक प्रसिद्ध आर्किटेक्ट, जो अँधेरे आडिटोरियम में बैठे थे, जेब से बोतल निकालकर पी रहे थे और वह अपना होश-हवास खोकर दरवाजे की आँख से देख रहा था···जब वह बोतल ऊपर उठाते, काँच का एक टुकड़ा छत पर नाचने लगता, उसकी आँखों को भेदने लगता और तब उसे याद आया, कैसे कुछ लोग धीरे-धीरे मदद के बाहर हो जाते हैं, जैसे माँ हो गयी थीं, जो घण्टों बदहवास-सी बिस्तर पर लेटी रहती थीं, असीम कष्ट में छटपटाती हुई और वह उन्हें वैसे ही देखा करता था, जैसे इस क्षण—दिल्ली की एक दुपहर—नित्ती भाई को देख रहा था; उन्हें कोई मदद, कोई उम्मीद नहीं थी। ऐसे लोग उम्मीद को भी पार कर लेते हैं और उन्हें वह सौभाग्य भी नहीं मिलता, जो कम-से-कम नाटक के ऐक्टरों को मिल जाता है, जो किताबों में है, जिन्हें बिट्टी के दोस्त पढ़ते थे—गीता में है, जिसमें डूबकर बाबू माँ की मृत्यु को भूल जाते थे; वह उस रिकार्ड में था, जिसके भीतर से नीग्रो लड़की की फटी-फटी आवाज़ बाहर आती थी···

वह अपने को नहीं रोक सका। झपाट से क्यूबिकल का दरवाजा खोला और आडिटोरियम में चला आया। वहाँ कोई नहीं था। नित्ती भाई कब के जा चुके थे। उनकी सीट खाली पड़ी थी। अँधेरे में सिर्फ ह्विस्की की बासी गन्ध तैर रही थी।

अब कोई अँधेरा नहीं था। वह धूप में चल रहा था। वह दुपहर के उजाले में आ गया था। अब कोई नहीं था, न थियेटर, न माया, न अफसोस। यह असली दुनिया थी। वह अप्रैल का दिन था। वह पेड़ों के नीचे चल रहा था और पेड़ असली थे। और उनकी छायाएँ सड़क को लाँघकर बँगलों तक जाती थीं।

उसने मण्डी हाउस का स्कैयर पार किया और भगवानदास रोड पर चला आया। कभी-कभी वह रुक जाता। ठहर जाता। सुनने लगता। दिल्ली भी कैसा शहर है। वह सोचने लगता। लाल ईंटों के बँगले, हवा में काँपते टेलीविजन के पोल, परदे, परदो के पीछे लोगों की अज्ञात जिन्दगी—जिसे वह कभी नहीं जानेगा।

वह चलता रहा और फिर बस-स्टैण्ड पर आकर रुक गया। सब बसें निजामुद्दीन होकर जाती थी। एक हरा शैड और इक्के-दुक्के यात्री—हार्डिंग ब्रिज पर जब कोई ट्रेन गुजरती, तो धुएँ की लहर उडती हुई आ जाती। पीछे बंजर मैदान था। कुछ सोये हुए खण्डहर और आधी टूटी दीवारें, ऊपर कव्वे उड़ते थे। पुराने किले का चक्कर लगाकर वापिस मुडते थे—नुमायश के मैदान पर उतर जाते थे।

वह उन्हें देख रहा था। एक दिन बिट्टी के साथ यहाँ आयेगा, बहुत देर तक घूमेगा। इलाहाबाद मे कोई ऐसा मैदान नहीं था, जहाँ नुमायश बीत गयी हो और फिर भी खडी हो, कायम हो, अपनी जगह जमी हो—पुरानी दुकानों के स्टॉल, टॉवर, धूल मे सने खोखल—कंकाल। बाहर से साबुत और ठोस, भीतर जाओ, तो खाली, बासी हवा, और कुछ भी नही। खाली और सुनसान—जिस तरह कुछ कब्रें जमीन में धँस जाती हैं, घास उग आती है। बच्चे उस पर खेलते हैं और किसी को याद भी नही रहता कि भागते पैरों और सरसरी घास के नीचे कोई दबा है, लेकिन अचानक किसी दिन कोई उखड़ा पत्थर पाँवों मे घुप जाता है, एक चेहरा बाहर झाँकता है, देखो मैं वही हूँ, जो तुम्हारे साथ आयी थी। जनवरी के दिन, जब इलाहाबाद मे नुमायश शुरू हुई थी और मेरे इम्तहान पास आ रहे थे···तुम्हें याद है?

उसे याद है। वह उसे घसीटकर लाया था। वह आती नही थी। वह महीनो कमरे मे पडी रहती थी। वह उसे किताबो से खीचकर बाहर लाया था। उसने कपड़े भी नही बदले—जैसी थी, वैसी ही उसके साथ चली आयी थी—इस एक शर्त पर—कि वे एक घण्टे में घर लौट आयेंगे। वह मान गया था क्योंकि बदले में बिट्टी ने उसे यह तसल्ली दी थी कि वे रिक्शा मे जायेंगे और रिक्शे के पैसे वह देगी।

कैसे याद किया जाता है? आँखें मूँदकर वह दो बरस के अँधेरे को लाँघ गया—और एक टापू पर उतर आया—जहाँ सिर्फ रोशनियाँ थी, रोशनियाँ और हवा में उडते गुब्बारे और अँधेरे में घूमता हुआ जायन्ट ह्वील, एक लाल सुर्ख सितारा, जिस पर बच्चों की हँसी और चीखें गूँज रही थी। नुमायश के बीच बड़े मैदान में एक बैण्ड मास्टर बेंत घुमाता हुआ चल रहा था—पीछे बैण्ड बजाते हुए

थे। लेकिन उस दुपहर जो आदमी पिछली सीट पर बैठा दिखायी दिया—उसे एक क्षण विश्वास नहीं हुआ, कि वह नित्ती भाई हो सकते हैं। वह नित्ती भाई ही थे। उन्होंने शेव भी नहीं की थी। कमीज के कालर मुड़े हुए थे और उन्होंने वही खाकी हाफ पैन्ट पहन रखी थी, जूते और मोजों के साथ। मुँह थोड़ा-सा खुला था, जैसे साँस लेना मुश्किल हो।

वह आडिटोरियम में अकेले बैठे थे। वहाँ उन्हें कोई नहीं देख सकता था। लेकिन वह अपने सूराख से उन्हें देख रहा था। रोशनदान का चौकोर, रोशनी का चकत्ता उनके बालों पर गिर रहा था, चाँदी के छल्ले की तरह, उन्हें दो फाँकों में काटते हुए—एक आदमी, जिसका घर था और पत्नी थी—दूसरे एक प्रसिद्ध आर्किटेक्ट, जो अँधेरे आडिटोरियम में बैठे थे, जेब से बोतल निकालकर पी रहे थे और वह अपना होश-हवास खोकर दरवाजे की आँख से देख रहा था···जब वह बोतल ऊपर उठाते, काँच का एक टुकड़ा छत पर नाचने लगता, उसकी आँखों को भेदने लगता और तब उसे याद आया, कैसे कुछ लोग धीरे-धीरे मदद के बाहर हो जाते हैं, जैसे माँ हो गयी थीं, जो घण्टों बदहवास-सी बिस्तर पर लेटी रहती थीं, असीम कष्ट में छटपटाती हुई और वह उन्हें वैसे ही देखा करता था, जैसे इस क्षण—दिल्ली की एक दुपहर—नित्ती भाई को देख रहा था; उन्हें कोई मदद, कोई उम्मीद नहीं थी। ऐसे लोग उम्मीद को भी पार कर लेते हैं और उन्हें वह सौभाग्य भी नहीं मिलता, जो कम-से-कम नाटक के ऐक्टरों को मिल जाता है, जो किताबों में है, जिन्हें बिट्टी के दोस्त पढ़ते थे—गीता में है, जिसमें डूबकर बाबू माँ की मृत्यु को भूल जाते थे; वह उस रिकार्ड में था, जिसके भीतर से नीग्रो लड़की की फटी-फटी आवाज़ बाहर आती थी···

वह अपने को नहीं रोक सका। झपाट से क्यूबिकल का दरवाजा खोला और आडिटोरियम में चला आया। वहाँ कोई नहीं था। नित्ती भाई कब के जा चुके थे। उनकी सीट खाली पड़ी थी। अँधेरे में सिर्फ ह्विस्की की बासी गन्ध तैर रही थी।

अब कोई अँधेरा नहीं था। वह धूप में चल रहा था। वह दुपहर के उजाले में आ गया था। अब कोई नहीं था, न थियेटर, न माया, न अफसोस। यह असली दुनिया थी। वह अप्रैल का दिन था। वह पेड़ों के नीचे चल रहा था और पेड़ असली थे। और उनकी छायाएँ सड़क को लाँघकर बँगलों तक जाती थीं।

उसने मण्डी हाउस का स्कैयर पार किया और भगवानदास रोड पर चला आया। कभी-कभी वह रुक जाता। ठहर जाता। सुनने लगता। दिल्ली भी कैसा शहर है। वह सोचने लगता। लाल ईंटों के बँगले, हवा में काँपते टेलीविजन के पोल, परदे, परदो के पीछे लोगों की अज्ञात जिन्दगी—जिसे वह कभी नही जानेगा।

वह चलता रहा और फिर बस-स्टैण्ड पर आकर रुक गया। सब बसें निजामुद्दीन होकर जाती थीं। एक हरा शैड और इक्के-दुक्के यात्री—हार्डिंग ब्रिज पर जब कोई ट्रेन गुजरती, तो धुएँ की लहर उड़ती हुई आ जाती। पीछे बंजर मैदान था। कुछ सोये हुए खण्डहर और आधी टूटी दीवारें, ऊपर कव्वे उड़ते थे। पुराने किले का चक्कर लगाकर वापिस मुड़ते थे—नुमायश के मैदान पर उतर जाते थे।

वह उन्हे देख रहा था। एक दिन बिट्टी के साथ यहाँ आयेगा, बहुत देर तक घूमेगा। इलाहाबाद मे कोई ऐसा मैदान नही था, जहाँ नुमायश बीत गयी हो और फिर भी खड़ी हो, कायम हो, अपनी जगह जमी हो—पुरानी दुकानों के स्टॉल, टॉवर, धूल में सने खोखल—कंकाल। बाहर से साबुत और ठोस, भीतर जाओ, तो खाली, बासी हवा, और कुछ भी नही। खाली और सुनसान—जिस तरह कुछ कब्रें जमीन में धँस जाती हैं, घास उग आती है। बच्चे उस पर खेलते हैं और किसी को याद भी नही रहता कि भागते पैरों और सरसरी घास के नीचे कोई दबा है, लेकिन अचानक किसी दिन कोई उखड़ा पत्थर पाँवों मे घुप जाता है, एक चेहरा बाहर झाँकता है, देखो, मैं वही हूँ, जो तुम्हारे साथ आयी थी। जनवरी के दिन, जब इलाहाबाद में नुमायश शुरू हुई थी और मेरे इम्तहान पास आ रहे थे···तुम्हें याद है ?

उसे याद है। वह उसे घसीटकर लाया था। वह आती नही थी। वह महीनो कमरे में पड़ी रहती थी। वह उसे किताबो से खीचकर बाहर लाया था। उसने कपड़े भी नही बदले—जैसी थी, वैसी ही उसके साथ चली आयी थी—इस एक शर्त पर—कि वे एक घण्टे में घर लौट आयेंगे। वह मान गया था क्योंकि बदले मे बिट्टी ने उसे यह तसल्ली दी थी कि वे रिक्शा में जायेंगे और रिक्शे के पैसे वह देगी।

कैसे याद किया जाता है ? आँखें मूँदकर वह दो बरस के अँधेरे को लाँघ गया—और एक टापू पर उतर आया—जहाँ सिर्फ रोशनियाँ थी, रोशनियाँ और हवा मे उड़ते गुब्बारे और अँधेरे में घूमता हुआ जायन्ट ह्वील, एक लाल सुर्ख सितारा, जिस पर बच्चों की हँसी और चीखें गूँज रही थी। नुमायश के बीच बड़े मैदान में एक बैण्ड मास्टर बेंत घुमाता हुआ चल रहा था—पीछे बैण्ड बजाते हुए

तीन तिलंगे—जो ताश के जोकर जैसे दिखायी देते थे, उदास, और ग़मगीन—धूप में लस्तम-पस्तम। वह ठहर जाता, सुनने लगता, बिट्टी उसका हाथ अपनी हथेलियों में दबोच लेती, उसे घसीटने लगती, "जल्दी चलो—आँखें फाड़-फाड़कर क्या देखते हो ?"

वह सहम जाता। खिसियाकर हँसने लगता। वह तब काफी छोटा था। वह आँखें फाड़कर देखता था। वह धीरे चलता था। दुनिया का जादू अभी खत्म नहीं हुआ था। वह तेजी से जी रहा था।

उसे पता नहीं चला, कब और कहाँ उसने बिट्टी को खो दिया। मुट्ठी खोली, तो हाथ खाली था—बिट्टी कहीं न थी। इतनी भीड़, इतना उजाला, धक्के देते हुए लोग। उसने पीछे मुड़कर देखा और बिट्टी वहाँ नहीं थी—कोई और लड़की उसके पीछे चल रही थी। वह भागने लगा। हर लड़की, जिसने सिलवार-कमीज़ पहनी होती, उसे बिट्टी-सी दिखायी देती।

तभी उसे अपना नाम सुनायी दिया—वह नाम—जो सिर्फ बिट्टी ही पुकार सकती थी। वह एक स्टॉल के सामने खड़ी थी और लोगों के सिरों के ऊपर दोनों हाथ बेतहाशा हिला रही थी। वह भागता हुआ उसके पास आया—और सहसा ठिठक गया।

"मुन्नू···" वह एक क्षण झिझकी और फिर लपककर उसका हाथ पकड़ लिया, "तुम कुछ देखना चाहोगे ?"

'तुम थीं कहाँ ?" उसका स्वर रुआँसा हो आया, "मैं तुम्हें हर जगह ढूँढ़ रहा था।"

"मैं तुम्हें बुला रही थी—लेकिन तुम आगे-आगे भाग रहे थे।" उसने कहा, "सुनो, एक चीज देखना चाहोगे ?"

"कैसी चीज है ?"

उसने कुछ नहीं कहा, सिर्फ उसका हाथ पकड़कर नुमायश की एक सँकरी गली में चलने लगी, जहाँ सिर्फ तम्बू दिखायी देते थे—छोटी-छोटी गुफाओं-से—जिनके दरवाजों पर लाल बल्बों की मालाएँ झूल रही थीं। बल्बों के इर्द-गिर्द पोस्टर लगे थे—राक्षसों के सिर, उड़ती हुई मछलियाँ, मूँछोंवाली औरत, जिसके दाँत नुकीली चोंचों-से बाहर निकलते थे···माइक्रोफोन पर कोई आदमी चीख-चीखकर एक ही वाक्य दुहरा रहा था—पता नहीं किस बोली में—जिसका एक भी शब्द वह नहीं पकड़ पा रहा था।

यहाँ रोशनी थी और अँधेरा था—और डर था जो एक निषिद्ध मोह के

साथ जुड़ा था, एक चमकीला-सा आतंक, एक मैला सैलाब, जिसमें हम पहली बार अपना बेवकूफ और पवित्र कुंवारापन डुबो देते हैं, इच्छा हुई, घर लौट जायें, भाग जायें—पर पैरों पर एक जादू सांप की तरह लिपटा था, एक गिलगिला-सा आकर्षण जो उसे अपने में बांधकर घसीट रहा था। बिट्टी—सूखे गले से उसका स्वर बाहर आया। बिट्टी, कहां जा रही हो ?

"बोलो नहीं, मेरे साथ चले आओ।" बिट्टी ने कहा, वह एक स्टॉल के सामने खड़ी थी। अनिश्चित और बेचैन और झिझकती हुई—तम्बू का दरवाजा आधा खुला था—और भीतर से एक भीनी, अगरबत्ती की बू बाहर आ रही थी।

"चलोगे ?" उसने पूछा, जैसे उसका आश्वासन पाना चाहती हो।

"क्या कोई सर्कस है ?" उसने पूछा।

"सर्कस ?" उसने हैरानी से उसकी ओर देखा, "मालूम नहीं···भीतर चलकर पता चलेगा।"

किसी ने उन्हें नहीं रोका। ऊपर कनात की छत थी और नीचे एक फटी-पुरानी दरी, एक मटियाली-सी रोशनी चारों तरफ फैली थी। अगरबत्ती की गन्ध हवा में एक बोझिल नशे-सी बैठी थी। दोनों तरफ रोशनदान थे—जिसके बाहर ढेर-से तारे थे—पहले क्षण उसे विश्वास नहीं हो सका—कि वे असली हैं।

वे आगे बढ़े, तो एक सिंहासन दिखायी दिया—लाल मखमली कालीन से ढका हुआ—जो नीचे सीढ़ियों तक चला आया था। उसकी आंखें ठहर गयीं। सबसे निचली सीढ़ी पर एक आदमी बैठा था। उसने एक जोगिये रंग का चोगा पहने रखा था और आंखें मूंद रखी थीं। सिर मुंडा हुआ था। भिक्षुओं की तरह—और नीचे की तरफ झुका हुआ था, जब वे भीतर आये तो भी वह नीचे झुका रहा—वह उसे देखता रहता अगर बिट्टी उसे कुहनी मार करके जगा न देती, "ऊपर देखो।" उसने फुसफुसाते हुए कहा।

उसने आंखें ऊपर उठायीं, तो चौंक गया···सिंहासन पर एक औरत का सिर दिखायी दिया—सिर्फ सिर और चेहरा—धड़ कहीं न था। पीला चेहरा—असंख्य झुर्रियों में लदा हुआ—जैसे मोम की गुड़िया पर बच्चे नाखूनों से लकीरें करोच देते हैं, मिस्र की ममी जैसा, बैठी हुई मुतली, न हाथ, न पैर, न टांगें—सिर्फ दो आंखें और आधा खुला हुआ मुंह—जैसे वह मुस्करा रही हो।

वह सचमुच मुस्करा रही थी। उन दोनों को देख रही थी। चेहरे की झुर्रियां खुल रही थीं। औरत ने जल्दी से आंखें झपकायीं—जैसे यह कोई संकेत हो—कोई सिग्नल—जिसे पाते ही सीढ़ी पर बैठा आदमी उठ खड़ा हुआ, अपने

चोगे को समेटा और सिंहासन की तरफ भागने लगा···और तब उसे अहसास हुआ, कि वह आदमी उतना ही बड़ा था, जितने पाँच-छै बरस के बच्चे होते हैं —एक सूखा हुआ ठूँठ, दो फुट लम्बा बौना।

उसने बिट्टी का हाथ पकड़ लिया, लेकिन बिट्टी खड़ी थी। उसकी आँखें सिंहासन पर टिकी थीं। बुढ़िया सिर झुकाकर बौने के कानों में कुछ कह रही थी और वह धीरे-धीरे अपना सिर हिला रहा था। फिर अचानक वह चुप हो गयी, बौना तेजी से सीढ़ियाँ उतरता हुआ नीचे चला आया। एक क्षण ठहरा, उन दोनों को देखा, फिर अपने चोगे को थोड़ा-सा ऊपर उठाकर आगे बढ़ा और उनके सामने आकर खड़ा हो गया।

इतने बरसों बाद आज भी उसका चेहरा स्मृति पर टँगा रह गया है—एक पुरानी फोटो-सा—गंजा सिर, मोटे लाल होंठ और गोल-मटोल-सी गर्दन—जैसे किसी ने दुनिया का ग्लोब दो लगड़ी-नुमा टाँगों पर टिका दिया हो। किन्तु जो चीज आज भी दिल को खोदती है—वह उसकी आँखें थीं—दो छोटी-छोटी दीवों-सी टिमटिमाती हुई, भीतर के अँधेरे को अपने पीले आलोक में टोहती, पिघलाती हुई। उसने कभी इतनी उदास आँखें नहीं देखी थीं।

वह एक कदम आगे आया—दोनों को बारी-बारी से देखा।

"क्या बहुत दूर से आये हो?"

उसने मुँह खोला और तब उसने देखा कि उसका ऊपरी होंठ बीच में कटा था—और कटाव के बीच एक सफेद दाँत बाहर झाँक रहा था।

"कहाँ से आये हो?" उसकी ग़मगीन आवाज दुबारा बाहर आयी।

"यहीं रहते हैं।" बिट्टी ने कहा।

"और यह बच्चा?"

"यह भी···"

बौने ने एक नजर उस पर डाली।

"बाहर बोर्ड देखा था?···एक सवाल की एक चवन्नी।" वह मुस्कराया, और इस बार दाँतों की पूरी एक पाँत बाहर निकल आयी। "पूछो, क्या पूछना है?"

बिट्टी चुप खड़ी थी। चेहरा सफेद पड़ गया था, जो तम्बू की रोशनी में और भी फीका जान पड़ता था। लेकिन आँखें बौने पर जमी थीं, जैसे उसके बाहर कुछ भी नहीं बचा था।

"डरो नहीं—जो मन चाहे, सो पूछो।"

वे दोनो चौंक गये। वह आवाज ऊपर से आयी थी—बुढिया की बीहड़, बेधडक, आवाज सन्नाटे को भेदती हुई—लेकिन कर्कश नही—उसमें एक अजीब-सा अपनापा था, जैसे इतनी दूर से भी उसने उन दोनों की धड़कनों को सुन लिया था।

"क्या बात है ?" बौना अचानक बिट्टी के सामने आ खड़ा हुआ, "तुम बहुत दुखी दिखायी देती हो ?"

बिट्टी इस बार न पीछे हटी, न हिली—बौने की आँखो को देखा, जो अन्तहीन उदासी में डूबी थी" फिर वह धीरे से मुस्करायी, "सुख क्या होता है ?"

"सुख !" बौने ने मुड़कर सिंहासन की तरफ देखा, बुढ़िया खिलखिलाते हुए हँस रही थी।—"दिखाओ···" उसने लगभग चीखते हुए कहा, "मुन्नी को दिखाओ, सुख क्या होता है !"

बौना पीछे हट गया, जैसे किसी ने उसे घूसा मारकर धकेल दिया हो। तम्बू के कनात में रोशनदान सहसा खुल गया। बाहर की हवा भीतर आ रही थी—जनवरी की हवा—जिसमें रोशनदान के पल्ले फडफड़ा रहे थे। बौना भागता हुआ स्टाल के बीचो-बीच आ खडा हुआ। वह काँप रहा था—बालिश्त-भर की देह में एक अजीब कँपकँपी छूट रही थी, जैसे हवा कही उसके शरीर को भेदकर आत्मा को झिंझोड रही हो। वह बिल्कुल भुक गया था। दुहरा-सा हो गया था जैसे अन्धड़ में पेड़ सिकुड जाते हैं। उसने अपने उडते जोगिया चोगे को कसकर पकड रखा, लेकिन फायदा कुछ भी न था। हवा के थपेडों से वह बार-बार खुल जाता था—जब खुलता था—उसकी ताँबे-सी पीली, मुरझायी टाँगें दिखायी दे जाती थी।

उसे याद आता है—अपना दिल—जो उसकी छाती की दीवार से टकरा रहा था। उसे कुछ समझ में नही आ रहा था कि क्या हो रहा है। और जो हो रहा है, वह अगर भयानक है तो वे अलग क्यों खड़े हैं, चुपचाप यह तमाशा क्यो देख रहे हैं। तमाशा ? उसे विश्वास न हो सका कि बौना उनके फायदे के लिए यह 'तमाशा' कर रहा है जबकि उसकी देह का रोंया-रोंया काँप रहा था। वह छटपटा रहा था। वह अपने उड़ते चोगे से अपने ठिठुरते अंगों को ढकने की कोशिश कर रहा था जैसे चढते बुखार की सर्दी में मरीज रजाई-कम्बल लपेट लेते हैं। वह कभी एक कोना पकड़ता था, कभी दूसरा, लेकिन हवा के भँवर मे कभी एक हिस्सा हाथ लगता, तो दूसरा फिसल जाता, देह दुबारा नंगी हो जाती। आखिर हताश होकर वह खड़ा हो गया, चोगे को खुला छोड़ दिया—और तब

, चोगे का भीतरी अस्तर धीरे-धीरे फट रहा है, तार-तार हो रहा है,
थिगलियाँ बाहर आती थीं, नीचे दरी पर बिखर जाती थीं; चारों
ने लगती थीं। वीना एक क्षण अवाक् उन्हें देखता रहा—जैसे यह कोई
—फिर वह उनके पीछे भागने लगा, निर्वस्त्र, अधनंगा, सिर्फ एक लँगोट
ी शर्म छिपाता हुआ। वह कभी एक थिगली को पकड़ने दौड़ता, कभी
को, चारों तरफ चक्कर काटता हुआ, हाँपता हुआ, बदहवास। अचानक
ठठक गया, बीच फर्श पर खड़ा हो गया। उसे शायद याद आया कि होश
पागलपन के परे भी कोई चीज है, जिसे वह घबराहट में भूल गया था
देखा कर गया था। उसने अपनी तरफ देखा, मानो इतनी लम्बी जिन्दगी
रान पहली बार अपनी ठूँठी देह को देख रहा हो। कुछ देर पहले जिस
र जोगिया चोगा था, वहाँ अब एक अधमरा चिथड़ा डोल रहा था। वह उस
हलाने लगा, ऊपर से नीचे तक—फिर उसे उतार दिया, तहाकर समेट लिया,
आगे बढ़ा, विट्टी के पैरों पर उसे रख दिया।—"यह सुख है, मुन्नी; देखो, हाथ
लगाकर देखो, सचमुच का सुख!"

वह सुख था, वह काँपता हुआ चिथड़ा···और ऊपर बुढ़िया हँस रही थी,
न हाथ, न पैर, सिर्फ डोलता हुआ सिर, जैसे कोई नंगी खोपड़ी नशे में डोल
रही हो···वे बाहर आने लगे, तो बीनें की आवाज सुनायी दी—चिथड़ों के
बीच एक चवन्नी के लिए हाँपती हुई, विट्टी ने जल्दी से पैसे उसके हाथ पर रखे,
देखा भी नहीं, वह मुस्करा रहा था, और वे बाहर चले आये; बाहर, जहाँ
नुमायश की रोशनियाँ हवा में अँधेरे को हिला रही थीं।

यह वही हवा थी, जो तम्बू के भीतर आयी थी—ठण्डी और विषण्ण; गंगा को
छूती हुई इलाहाबाद की हवा;···वे चुप थे। वे जल्दी-जल्दी चल रहे थे। वे
नुमायश के एक कोने में चले आये थे, जहाँ 'मेरी गो राउण्ड' के झूले घूम रहे थे
विट्टी उन्हें देखती हुई अचानक रुक गयी।

"बैठोगे?" उसने उसकी तरफ देखा। किन्तु इन्तजार करने से पहले
वह टिकट-घर की खिड़की के सामने गयी और आँख झपकते ही वे जाय
व्हील के निचले डिब्बे में बैठे थे। वे ऊपर जा रहे थे। उसका दिल डूब
था। वे हवा में उठ रहे थे।

वह आज भी देख सकता है···ध्रुव में धुँधआती इलाहाबाद की रो

तारे, छतो पर छितरायी चांदनी। वे ऊपर उठते थे, तो रोशनियां नीचे चली जाती थी, नीचे आते थे तो आकाश ऊपर उठ जाता था, ठण्डे तारों में ठिठुरता हुआ। वे बीने को भूल गये, हंसती हुई बुढिया और तार-तार हो जानेवाले सुख को भी··· वे अपने घरो को भी भूल गये, जो कही अंधेरे में छिपे थे। पहिय्ये के ऊपर उठते ही कान सनसनाने लगते, आधी चीखें गले मे फंस जाती, रोशनियो का झिलमिला आंखों को पकड़ लेता, लगता यह इलाहाबाद नही है, यह कोई चमचमाती मछली है, जो हवा मे सांस लेने ऊपर उठ आयी है, वह हाथ आगे बढायेगा और उसे पकड लेगा। उसने बिट्टी का हाथ पकड लिया। वह कुछ कहना चाहता था, अपने भीतर उमडते उछाह को बूंद-बूंद उड़ेलना चाहता था—लेकिन बीच मे भूला रुक गया। एक क्षण के लिए उसे विश्वास नहीं हो सका कि घूमती हुई दुनिया इस बेहूदा ढंग से ठहर जायेगी।

"क्या हम दूसरा राउण्ड नही ले सकते ?"

"तुमने सुना नही, यह आखिरी था।" बिट्टी ने कहा।

वह सचमुच आखिरी था। नीचे के बक्सो से लोग बाहर निकल रहे थे। वे ऊपर हवा मे बैठे थे—अपनी बारी आने की बाट जोह रहे थे।

अब वह आदमी बाहर आया, जो कुछ देर पहले टिकट बांट रहा था। वे दोनो एक-दूसरे से सटे दुबककर बैठे थे। आदमी कुछ देर तक ऊपर देखता रहा, फिर उसने जोर से आवाज लगायी— कोई ऊपर है ? वे दोनों चुप बैठे रहे।

हुआ कुछ नही। आदमी ने झूले के हैंडिल से अपना कोट उठाया, बीडी सुलगायी और सीटी बजाता हुआ गेट की तरफ चलने लगा।

वे सांस खीचकर चुप बैठे रहे, मानो वह आदमी अचानक पीछे मुडेगा, उनके धोखे को पकड लेगा, पहिय्या नीचे खीचेगा और उन दोनों को बाहर धकेल देगा।

"चला गया ?" बिट्टी ने उत्सुकता से पूछा।

"लेकिन क्यो ?" उसने हैरानी मे बिट्टी को देखा।

"अब हमें कोई नही देख सकता," बिट्टी ने कहा। कोई नही देख सकता, यह ख्याल आते ही उसके भीतर एक ठण्ड-सी फैलने लगी। उसे लगा, उस आदमी ने उन्हें नही देखा, तो कोई उन्हे नही देख सकता, वे अदृश्य हैं। वे कहीं ऊपर हैं, हवा और अंधेरे में, एक दूसरे के अंधेरे में जकडे हुए, शहर की रोशनियों, घरो, और आदमियो के ऊपर जहां कभी वे रहते थे, बहुत पहले, किसी दूसरे जन्म में··· उसकी समूची देह ठिठुरने लगी।

"सरदी लग रही है ?" बिट्टी ने उसे पास घसीट लिया, अपनी सा...
दराये घेरे में, "क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं ।"

वह कुछ नहीं सोच रहा था । वह बीच अँधेरे में बैठा था, न ऊपर, न नीचे,
...री दुनिया से कटा हुआ ।

"बिट्टी, क्या तुम पिछले जन्म में विश्वास करती हो ?" उसने अचानक पूछा ।

कुछ देर तक वह खामोश रही, फिर अँधेरे में उसका धीमा स्वर सुनायी
दिया—"मैं नहीं करती...तुम करते हो ?"

"मुझे पता नहीं..." उसने कहा, "लेकिन ऐसा समय जरूर रहा होगा, जब
हमें कोई नहीं जानता होगा...मेरा मतलब है..."

"तुम्हारा मतलब है..." बिट्टी ने कुछ सोचते हुए कहा, "अगर मैं सड़क पर
चल रही हूँ और तुमने मुझे देखा है, तब भी तुम मुझे नहीं पहचान सकोगे ।
तुम सोचोगे यह बिट्टी नहीं, कोई और है ।"

"क्या ऐसा हो सकता है ?"

"क्यों नहीं होता ? लोग अपना घर छोड़कर चले जाते हैं और जब बरसों
बाद लौटते हैं तो कोई उन्हें पहचान भी नहीं पाता ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि..." बिट्टी ने सिर उठाया और उसकी ऐनक के शीशे चाँदनी में
एकाएक चमचमा उठे, "क्योंकि वे एक ही जन्म में दूसरा जन्म ले लेते हैं ।"

"बेवकूफ होंगे..." उसने कहा, "क्या एक जिन्दगी काफी नहीं है ?"

"नहीं, बेवकूफ नहीं ।" वह एक लम्बे क्षण तक उसे निहारती रही, "ऐसे लो...
...ने से बहुत नफरत करते हैं, इसलिए वे अपने को छोड़ देते हैं । वे कुछ औ...
... जाते हैं..."

आदमी कैसे अपने को छोड़कर कुछ और बन जाता है, उसे कुछ समझ...
...हीं आया, किन्तु उस रात बीच हवा में बैठे हुए उसे सबकुछ सच लगा...
असम्भव लेकिन सच, चाँदनी रात में पेड़ों के नीचे एक खेल जैसा, जिस...
दिखायी देता है, वह नहीं है, जो सचमुच में है, वह दिखायी नहीं देता...

"बिट्टी, तुम कुछ और बनना चाहोगी ?"

वह चौंक गयी, नीचे देखने लगी, जहाँ नुमायश का मैदान एक पीले...
...की तरह फैला था—खाली, उजाड़, चकाचौंध ।

"तुमने उस बौने को देखा था ?" बिट्टी ने धीरे से कहा ।

"हाँ, क्यों ?"

"मैं वही बनना चाहती हूँ।"

वह भयभीत-सा होकर हँसने लगा। "तुम चिथड़े पहनोगी ?"

बिट्टी उसके पास सरक आयी, "वे चिथड़े नहीं थे···" उसने कहा, "वह सुख था।"

उसका स्वर इतना हल्का था कि अँधेरे में जान पड़ा, जैसे वह किसी स्वप्न का छिलका है, जो उसके हाथ में रह गया है, तारों की पीली छाँह में काँपता हुआ—उसे नीचे की तरफ खींचता हुआ, जहाँ इलाहाबाद के इतने वर्ष बेकार टुकड़ों की तरह हवा में उड़ रहे थे···

बिट्टी ने उसका हाथ पकड़ा और वे नीचे कूद गये। नीचे कोई न था। दुकानें बन्द हो गयी थीं। हवा में पुराने अखबार और झूठी पत्तलें उड़ रही थीं। मेरी गो राउण्ड के हाथी-घोड़े धीरे-धीरे घूम रहे थे—मानो हवा में नहीं—अपनी नींद के झोंकों में चक्कर लगा रहे हों। वे भागने लगे···नुमायश के चमकीले अँधेरे में, लाल बजरी पर मुर्दा और मरियल ढाबों के आगे जहाँ बौने की गुफा किसी प्रागैतिहासिक अँधेरे में डूबी थी। वे भाग रहे थे, बैण्ड के पवेलियन के साथ-साथ, पेड़ों पर झूलती रंग-बिरंगी रोशनियों के नीचे, अँधेरे और अँधेरे के बीच, हवा को सुनते हुए, जनवरी की जानलेवा रात के नीचे, जो उसकी हड्डियों में बर्फ की तरह जम गयी थी।

अप्रैल में बिट्टी के इम्तहान आये और चले गये। गर्मी की छुट्टियों में वह बीमार पड़ा और बिट्टी इण्टरव्यू के लिए दिल्ली चली गयी, लू में लदी, साँय-साँय करती दुपहरी में वह मिशनरी हण्टर के साथ जंगलों में भटकने लगा, जहाँ झाड़ियों के पीछे पैन्थर की उदास, भूखी आँखें दिन-रात चमकती थीं। फिर एक दिन चमत्कार हुआ था। बिट्टी की माँ हाथ में चिट्ठी लेकर उसके पास आयी थी, बिट्टी ने उसे बुलाया था क्योंकि "बीमार लड़के, जो स्कूल नहीं जाते, कहीं भी रह सकते हैं" और वह चला आया था, अब पुराने किले के सामने खड़ा था, बस की प्रतीक्षा में, खण्डहरों पर कव्वों को उड़ता देख रहा था।

८

शाम जब वह घर लौटा, दरवाजा खुला था। कमरे में रोशनी जल रही थी। ठिठक गया। ऐसा बहुत कम होता था कि वह घर लौटे और कमरा खुला ।

उन दिनों बिट्टी बहुत देर से घर लौटती थी। वह सो जाता था। कभी ीच में आँख खुलती तो देखता, किचन की बत्ती जली है। वह उसे आवाज देता और वह भागती हुई उसके कमरे में आ जाती, अँधेरे में ही उसके बिस्तर के पास बैठ जाती।

"हमने तुम्हें जगा दिया ?" वह उसके माथे पर हाथ रख देती—यह उसकी पुरानी आदत थी; जब से उसे बुखार आना शुरू हुआ था।

"कब आयीं ?"

"एक घण्टा पहले—तुम सो रहे थे।"

"अकेली ?"

"नहीं, डैरी छोड़ने आये थे। मैंने उन्हें कॉफी के लिए ऊपर बुला लिया—किचन में बैठे हैं। तुम थोड़ी-सी ओवल्टीन लोगे ?"

ऐसी रातें बहुत सुखद होती थीं। बिट्टी रसोई में चली जाती। डैरी उठकर उसके पास आ जाते। बैठ जाते। वह ज्यादा नहीं बोलते थे। उन दिनों सिर्फ उनकी शक्ल याद रहती थी। स्टूडियो के कोने में बैठे हुए, ऐक्टरों से बातें करते हुए—काली छितरी हुई दाढ़ी, बहुत घनी पलकों में ढँकी आँखें, जो आधी मुँदी रहतीं, जैसे पूरी खोलने पर जो दुनिया दिखायी देगी, उसे झेल पाना असम्भव हो।

बिट्टी ओवल्टीन का गिलास लाकर बीच में बैठ जाती। कोई उन ती को खुली बरसाती में देखता, तो सोचता, शरणार्थियों का कोई परिवार वेटिंग-रूम के आगे बैठा है, ट्रेन की प्रतीक्षा में—और यह उसे अद्भुत वेंचर-सा जान पड़ता, इतनी रात गये बातें सुनना, ओवल्टीन पीना,

रहना—कोई मना करनेवाला नहीं। इलाहाबाद में था, तो दस बजे ही बत्ती बुझानी पड़ती थी।

वे कितनी पास बैठे थे! छत की मुंडेर से सटी बिट्टी और उसके सामने बैठे डैरी... वह कम्बल में लिपटा हुआ उन्हें देख रहा था। एक फाँस-सी भीतर गड़ने लगती। वे इतने धीमे बोलते जैसे उन्हें कोई डर हो—यह कोई प्रेम है? उसने कभी ऐसा नहीं देखा! अकेले हैं, तो डर किसका? फिर वह पागल लड़की चाकू चमकाती हुई दिखायी दे जाती, वह जैसे कोई बड़ा विराट भेद उसके कानों में कहना चाहती—लेकिन वह पीछे हट जाता। मुझे माफ करो—मुझे किसी सत्य की लालसा नहीं; तुम जाओ—प्लीज़ गो, गो अवे! वह खड़ी रहती, फीकी चाँदनी में काजल का टोटका-सी—डैरी की बहिन, छत पर मँडराती हुई—और तब उसे हैरानी होती, कि दिल्ली कैसा शहर है, कोई भी झाड़ियों से निकलकर छत पर आ सकता है, घूम सकता है, दरवाज़ा खटखटा सकता है...

उसने दरवाज़े की तरफ देखा—कोई नहीं था—वह फिर निश्चिन्त होकर किताब पढ़ने लगता। यह सबसे सुन्दर समय होता। वह ओवल्टीन पीता हुआ देर रात तक पढ़ता रहता। रानीखेत और चौबटिया के जंगल, सरसराती लम्बी घास, अँधेरे में रिरियाते गीदड़। नहीं, ये गीदड़ नहीं, मिसेज़ पन्त के कुत्ते थे जो चाँदनी रात में बावलों की तरह चीखते थे। मिसेज़ पन्त अपना लहँगा फैलाकर ट्रांजिस्टर सुनती—अकेली बूढ़ी औरत; झाड़ियों में चमकती पैन्थर की आँखें। उसकी आँखें मुंदने लगती...कुछ देर में सबकुछ शान्त हो जाता।

सबकुछ नहीं। छत की आवाज़ें बराबर सुनायी देती रहती थीं। पता नहीं, इतनी गयी रात वे क्या बातें करते होंगे? कभी-कभी उनकी आवाज़ें इतनी तेज़ हो जाती कि उसे शर्म-सी आने लगती। नीचे कोई सुनेगा, तो क्या सोचेगा? वह मन ही मन प्रार्थना करने लगता कि वे झगड़ा न करें और कभी-कभी ऐसा होता कि ईश्वर सचमुच उसकी प्रार्थना सुन लेता। छत में सन्नाटा हो जाता। बिट्टी कमरे में आती और बिना अपने कपड़े बदले बिस्तर में घुस जाती। वह दबे पैरों बाहर आता, देखता, छत पर डैरी चुपचाप सिगरेट पी रहे हैं। अकेले। दूसरी छतों को ताकते हुए—और तब उसके भीतर कोई चीज़ हिलने लगती, पिघलने लगती; याद आता, शायद वह दूसरे डैरी हैं, असली डैरी बन्दूक लेकर बिहार के गाँवों में घूम रहे हैं, भागते हुए, भटकते हुए, पुलिस से बचते हुए...

लेकिन कोई आदमी दो जगहों में कैसे जी सकता है ?

वह लौट आता। अपने बिस्तर पर लेट जाता। देह में कँपकँपी-सी छूटने लगती। पता नहीं, बुखार की ठण्ड, या सिर्फ ठण्ड, सिर्फ डर; सिर्फ... वह चौंक जाता। नीचे मोटर साइकिल की गड़गड़ाहट सुनायी देती—अँधेरे को झिंझोड़ती आवाज—और उसे सुनते ही बिट्टी उठ जाती, भागते हुए छत पर जाती, मुंडेर के नीचे झाँकने लगती, पता नहीं, कितनी देर छत पर खड़ी रहती और जब सुबह उसकी आँख खुलती तो देखता, बिट्टी गुड़गुड़ी-सी बनकर सो रही है, पीली, थकी और क्लान्त।

किन्तु अगली रात डैरी फिर आते, मानो पिछली रात कुछ हुआ ही न हो। वह यह भी न पूछते कि बिट्टी घर में है या बाहर; सीधे छत पर चले आते और नंगी जमीन पर बैठ जाते; अपना डफल बैग उसके सामने रख देते मानो कहीं छापा मारकर पूरा खजाना लूट लाये हों—चीज के क्यूब्स, सार्डीन और सलामी के टिन, ब्राउन डबलरोटी—किन्तु जो चीजें उसे हमेशा हैरानी में डाल देतीं, वे होतीं बियर की बोतलें, पीली सोंधी घास में लिपटी हुईं। यह उनके लान की ताजा कटी घास होती। घास क्यों, तो हँसते हुए कहते, इससे अप्रैल के मौसम की गन्ध आती है, पागल, सनकी, बिल्कुल अपनी बहिन की तरह...

अप्रैल का मौसम ! फाटक पर सेमल का पेड़ फरफराता था। न गर्मी, न सर्दी, सिर्फ एक गुनगुनी-सी हवा छतों को लाँघती थी और जब शाम होती तो मकबरे का गुम्बद गुलाबी हो जाता था, धीरे-धीरे अँधेरे में डूब जाता था, किन्तु कुछ देर में वह फिर दिखायी देता, आकाश के गुम्बद तले, तारों में झिलमिलाता हुआ।

बियर खोली जाती।

पेड़ की पत्तियों को छत के कोने में समेट दिया जाता।

डैरी रिकार्ड-प्लेयर की तार खींचकर बाहर ले आते, छत पर; जहाँ अँधेरे में पता नहीं चलता था कि रिकार्ड का संगीत कहाँ से उठ रहा है, कहाँ जाकर गिर रहा है, पहाड़ी धुन्ध की तरह, जिसके पीछे टेलीविजन के पोल दिखायी देते और निजामुद्दीन का स्टेशन और मकबरे की छाँह और उसके नीचे डैरी बैठे रहते थे, बार-बार बरसाती की तरफ देख लेते थे—

"बिट्टी कहाँ है ?" उन्होंने पूछा।

"रसोई में – आज पानी आ रहा है।"

उन दिनों सिर्फ रात को नल खुलता था। एक साथ सब मकानों की पाइप्स

बुड़बुड़ाने लगती। वह और बिट्टी जल्दी-जल्दी सब बर्तनों-बाल्टियों को भरने लगते। किन्तु उस रात वह बैठा रहा। बहुत दिनों बाद उसे अपनी देह तपती-सी जान पड़ी। आँखों के आसपास आग-सी सुलग रही थी।

सहसा लगा, पैरों के नीचे पानी आ रहा है। चटाई भीग रही थी। वह भागता हुआ गुसलखाने में आया तो देखा, बिट्टी नल बन्द करना भूल गयी थी। बाल्टी में भरा हुआ पानी बाहर बह रहा था। बिस्तर पर बिट्टी औंधे मुँह लेटी थी।

बत्ती नहीं जली थी, पर कमरे में अँधेरा नहीं था। तारों का आलोक चमकीला रेत-सा चारों तरफ सरक आया था, हर चीज मुँह उठाये उसे ताक रही थी, दो बिस्तर और बीच में मूढ़ों का पार्टीशन, किताबों की जिल्दें, चौकी पर रखी सुराही, दीवार पर चिपकी मदर टैरेसा की तस्वीर। अचानक उसे खयाल आया, बिट्टी की गृहस्थी कितनी अस्थायी है, कितनी छोटी—उसे किसी भी समय छोड़कर निकला जा सकता है।

"क्या डैरी आ गये?" उसने पूछा।

"बाहर बैठे हैं।" वह एक क्षण झिझका, "तुम यहाँ क्या कर रही हो?"

"तुम जाओ—मैं अभी आती हूँ।"

वह वैसे ही लेटी रही, तकिये पर बाल बिखराये, मुँह मोड़कर, मूढ़ों के पीछे।

वह बाहर आया, तो चाँद छतों पर डोल रहा था। डैरी अपने गिलास के आगे बैठे थे। वह बहुत देर तक बिना हिले-डुले बैठे रहे, न उनसे कुछ कहा, न बियर का गिलास छुआ। जब एक रिकार्ड खत्म हो जाता, तो दूसरा लगा देते, फिर मुँडेर का सिरहाना लगाकर बैठ जाते। तुम सिर्फ चेहरा देख सकते हो—पूरा वह भी नहीं—पता नहीं पूरा चेहरा बनने में कितना समय लगता है, जिसे हम अन्तिम और सम्पूर्ण कह सकें? डैरी को देखकर लगता था जैसे उनके कई चेहरे रास्ते में छूट गये हैं, सेंट स्टीफेन्स कालेज में, बिहार के गाँवों में, स्टूडियो के स्टेज पर या अब, जैसे वह अब हैं, छत की धुंधली रोशनी में बैठे हुए?

हल्की-सी खटखटाहट हुई और दरवाजा खुल गया। बिट्टी बाहर आयी थी वह मुँह धोकर आयी थी; बाल खुले थे, जो सोले नहीं गये थे, सिर्फ ढीले होकर जूड़े से बाहर निकल आये थे। कानों पर झूलती लटें अब भी पानी में भीगी थीं। वह अपने साथ गिलास लायी थी—डैरी के कन्धे को छूकर कहा, "थोड़ी-सी मुझे दोगे?"

री ने चौंककर उसकी ओर देखा—और तब उसे लगा, एक चेहरा और आईना है, बिट्टी के अक्स से जुड़ा हुआ, जो अपने में कुछ नहीं है किन्तु पर बिट्टी की हर साँस भाप की तरह जम जाती है।

बिट्टी ने हाथ आगे बढ़ाया और धीरे-धीरे डैरी के हाथ को सहलाने लगी, अब भी बियर के गिलास से चिपका था। एक सुन्न-सी छुअन, जब उँगलियों पोरों पर अनकहे शब्दों की पीर दूसरे की उँगलियों में पथराने लगती है।

री ने सिर उठाया, एक हल्की-सी मुस्कराहट में बिट्टी को देखा और तब बिट्टी सहलाते हाथ ठिठक गये··· जैसे किसी आनेवाले खतरे की आहट उसे मिली हो···

कैसा खतरा ? न जंगल, न पहाड़, न झाड़ियों में चलता पैन्थर। वह थक-कर लेट जाता। वह भूल जाता जीवित प्राणियों में रिसते कौन-से काँटों के बीच विसटते हुए अपनी खून की बूँदें छोड़ जाते हैं ? वह अपना बिस्तर देहरी पर सरका लेता। आधा भीतर, आधा बाहर। वहाँ वह हवा से बच सकता था। दोनों को देख सकता था। लेट सकता था। लेटकर अपने बुखार में अकेला रह सकता था।

वे चुप बैठे थे, लेकिन लगता नहीं था कि वे चुप हैं और उसे यह बहुत विचित्र लगा कि वह उन्हें सुन रहा था, जबकि वे कुछ भी नहीं बोल रहे थे और तब उसने सोचा, शायद यह प्रेम है, एक-दूसरे को सुन पाना, चाहे उसमें कितना ही सन्देह और निराशा क्यों न भरी हो। उन्हें शायद इसका पता भी नहीं था—किन्तु वह सूँघ सकता था, उस मेहमान की तरह जो पराये घर की गन्ध एकदम सूँघ लेता है, जबकि घर के निवासियों को उसका गुमान भी नहीं होता।

उसने करवट ली; आधी नींद के अँधेरे में बिट्टी की आवाज सुनायी दी, "तु

उनसे मिले थे ?"

"हाँ···एक बार उनके घर गया था।"

"कौन-से घर ?"

"माल रोडवाले घर में···वह कई दिनों से अपने आफिस में नहीं रहे।"

"डुरा को मालूम है, तुम गये थे ?"

"उसने ही मुझसे जाने के लिए कहा था—" डैरी ने गिलास उठा गिलास पर चिपकी बियर की फेन चमकने लगी। स्टूडियो का हाल

दिया, पीली बत्तियों में भीगा मंच, पिछली बेंच पर बैठे हुए नित्ती भाई, बोतल से ह्विस्की पीते हुए, स्टेज को ताकते हुए। वह चले जाते हैं और पेड़ के तने पर झुक जाते है, इरा के होस्टल से बाहर निकलती हुई सँकरी गली, और अँधेरे में फड़फड़ाता पेड़ और तब वह होश में आया, बुखार की खन्दक से बाहर निकला, तो अपनी छत का पेड़ दिखायी दिया, अप्रैल की हवा में गदराया हुआ, अपनी छाया पर इतराता, सेमल का सेमी-सर्किल, सी-गल, हवा में उड़ता हुआ, उसकी आँखें खुल गयीं, ध्यान बीच में अटक गया ··

"सी-गल ?" बिट्टी ने आँखें ऊपर उठायीं।

"हाँ,—सुनो, हम उसे अगली गर्मियों में कर सकते हैं। नित्ती भाई बहुत खुश होंगे·· उन्होंने सारे सैट डिजाइन किये हैं।"

बिट्टी ने अजीब जिज्ञासा से डैरी को देखा, किन्तु वह कहीं और थे—उनका स्वर एक छलछलाते उत्साह में उमड़ आया था।

"बिट्टी, अगर हम स्ट्रिनबर्ग के नाटक में सफल हो जाते है, तो दूसरे शहरों में भी जा सकते है; तुम हिन्दुस्तान घूमना चाहती थी·· "

"हिन्दुस्तान ?" बिट्टी चाँदनी में हिलती सेमल की फुनगियों को देखने लगी, जैसे हिन्दुस्तान कहीं उनके बीच उलझा है।

"इरा इंग्लैण्ड लौट रही है।" उसने कहा।

डैरी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से बिट्टी को देखा, फिर नीचे झुककर धीरे से कहा, "यह गलत है।"

"क्या गलत है, डैरी ?"

"पता नहीं, हिन्दुस्तान के बाहर उसे क्या मिलेगा ?"

"और यहाँ ?" बिट्टी ने डैरी को देखा, "यहाँ उसे क्या मिल सकता है ?"

"मिलता कुछ नहीं," डैरी ने कहा, "लेकिन जब वह यहाँ आयी थी, थियेटर में उसका मन लगता था·· मैं सोचता था, वह अपने काम में इतना उलझ जायेगी, कि दूसरी चीजों के बारे में भूल जायेगी, जिनका कोई हल नहीं है।"

"दूसरी चीजें !" बिट्टी छतों के आर-पार देखने लगी, "जिनका हल नहीं होता डैरी, क्या वे चीजें खत्म हो जाती हैं ?"

"खत्म नहीं होतीं।" डैरी के स्वर में एक अजीब-सी कटुता भर आयी, "लेकिन वे छोटी हो जाती हैं·· अगर तुम्हें अपने काम में विश्वास हो, तो एक न एक दिन उन्हें भुलाया जा सकता है।"

बिट्टी धीरे से हँस दी।

"तुम भुलाने की कोशिश करते हो ?"

डैरी ने बिट्टी को देखा। एक क्षण तनी हुई खामोशी दोनों के बीच खिंची रही।

"मैं बहुत दिनों से तुमसे कुछ पूछना चाहती थी।" बिट्टी का स्वर बहुत धीमा था। "तुम क्या सचमुच थियेटर में विश्वास करते हो ?"

"तुम क्या सोचती हो ?"

"नहीं—मैं सचमुच जानना चाहती हूँ।"

"यह विश्वास की बात नहीं है—" डैरी ने कुछ थके हुए स्वर में कहा, जैसे किसी बरसों पहले चली हुई ज़मीन पर वह दुबारा चल रहे हों। "मेरे लिए यही सबकुछ है।"

"उसके बाद भी, जो कुछ तुमने देखा है ?"

"मैंने जो देखा है बिट्टी, उसे तुम जानती हो···" डैरी की ठण्डी, विरक्त-सी आवाज़ को सुनकर वह भयभीत-सा हो गया, मानो वह किसी खतरे के ज़ोन में आ फँसे थे, चारों तरफ़ कँटीली तारें लगी थीं, लेकिन अपनी ज़िद की रौ में वह पीछे नहीं हटना चाहते थे···

"जानते हो, जब मैं दिल्ली आयी थी, लोग क्या कहते थे ?"

"किसके बारे में ?" डैरी ने विस्मय से बिट्टी को देखा।

"तुम्हारे बारे में···तुम बिना किसी से कुछ कहे-सुने यूनिवर्सिटी छोड़क चले गये थे।"

"कोई फायदा नहीं, बिट्टी।" डैरी ने खाली निगाहों से बियर की बोतल देखा, जो खुद खाली थी। "वह अलग समय था—और हम दूसरे लोग थे। सोचते थे, एक दिन में सबकुछ बदला जा सकता है—वह पागलपन था।"

"अच्छा ?" बिट्टी धीरे से हँस पड़ी, "यह नार्मल जिन्दगी क्या होत डैरी ? ब्रेख़्त के नाटक ?" बिट्टी के होंठ एक अजीब मुस्कान में खुल गये "रिकार्ड···किताबें···शाम को बियर पीना ?"

डैरी के हाथ गिलास पर थमे रहे।

"बिट्टी, तुमने क्या सोचकर घर छोड़ा था ?"

डैरी का स्वर इतना ठण्डा, इतना भावहीन था, कि बिट्टी की मुस्कराह पर जमी रही।

"मैं सोचती नहीं···सिर्फ तुमसे जानना चाहती हूँ।"

"तुम मुझे जानती हो—जैसा मैं हूँ ?"

"क्या मतलब ?"

एक क्षण डैरी हवा में हिलती कपड़े टांगनेवाली तार को देखते रहे।

"तुमने कभी किसी को मरते हुए देखा है ?" डैरी ने एक साँस ली और उसमें किसी बहुत पुरानी दुपहर की तितीरी आत्मा झलक आयी, "मरना नहीं, किसी को मारकर मरते हुए देखना·· देखोगी, तो मालूम होगा·· " वह रुक गये, बिट्टी की आँखें उन पर जमी थी।

"क्या मालूम होगा, डैरी ?"

"कुछ भी नहीं।" डैरी ने बहुत धीरे से कहा। "जब तक तुम आँखों से नहीं देखतीं, कुछ भी मालूम नहीं होता।"

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। एक बार इच्छा हुई, करवट बदलकर डैरी को देखे, क्या यह वही लडके हैं, जो ऐनक के पीछे आँखें झिपझिपाते हुए स्टेज पर बैठे रहा करते थे, स्ट्रिनबर्ग का रहस्य समझाते थे ? लेकिन वह लेटा रहा, उठते हुए बुखार में सब चीजें डूबती-सी जान पडी, छत, स्टेज, स्ट्रिनबर्ग, सेत, मरी हुई आँखें—सब।

रिकार्ड अचानक ठहर गया था; घूमता हुआ डिस्क घुर्र-घुर्र कर रहा था, खाली हवा को खाता हुआ; बिट्टी ने उठकर रिकार्ड-प्लेयर बन्द कर दिया। अपनी सिगरेट सुलगायी, तो तीली की रोशनी सहसा भभक उठी—डैरी का गिलास ज्यो-का-त्यों पडा था। अब वह नहीं पी रहे थे।

"डैरी, तुम क्या अब भी सोचते हो ?" बिट्टी का स्वर बहुत कोमल हो आया था।

"किसके बारे में ?"

"तुमने जो दिन वहाँ बिताये थे ?"

"वे दिन नहीं थे···वह मेरी उम्र थी।" डैरी ने कहा, "उम्र बीत भी जाती है, तो भी उसे ढोना पडता है।" वह कुछ देर ठहरे, उन्होंने बिट्टी को देखा, "जब तुमने घर छोड़ा था, तो कभी थियेटर के बारे मे सोचा था ?"

"थियेटर के बारे में नहीं·· लेकिन ऐक्टरों को देखकर मुझे बहुत हैरानी होती थी—जैसे बौनों को देखकर या बहुत बूढी औरतो को देखकर—मुझे लगता था, जैसे उनके पास कोई सत्य है, जो हमारे पास नहीं है।"

"कैसा सत्य ?"

"मुझे लगता था, हम उन्हे जैसा देखते हैं, वैसे वे नहीं हैं— वे कोई दूसरी जिन्दगी बिताते हैं, जिसके बारे में हमे कुछ पता नहीं है। मैं उनमे नहीं हूँ।"

"यह तुम्हें कब पता चला ?" अँधेरे में मालूम नहीं हुआ; क्या डैरी मुस्करा रहे हैं ?

"दिल्ली आने पर···" विट्टी ने गिलास में बची बियर पी डाली—"इन दो सालों में मैंने कितने पार्ट खेले हैं···मैं दूसरों की जिन्दगी जीती हूँ, लेकिन खुद वहीं हूँ जहाँ पहले थी···पहले से भी बदतर। इलाहाबाद में थी, तो कम-से-कम बहाना तो नहीं करती थी कि मैं कुछ हूँ।"

"तुम विट्टी···तुम इस सबको बहाना समझती हो ?"

"मैं तुम्हारे लिए नहीं कह रही···तुम सबकुछ देखकर थियेटर में आये हो; मैं घर छोड़कर यहाँ आयी थी।"

"इससे क्या फर्क पड़ता है ?"

"बहुत फर्क पड़ता है···अपने को देखो, तुम्हें कभी अपने आप पर सन्देह नहीं होता···तुम हमेशा ठीक बात कहते हो।"

"तुम सोचती हो, दिल्ली लौटकर मैंने कोई जुर्म किया है ?"

"मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं कहा।"

"तुम कहतीं नहीं, सिर्फ जज करती हो।"

विट्टी पीछे हट गयी, मुँडेर से सटकर बैठ गयी।

"ठीक है, अगर तुम ऐसा सोचते हो, तो मैं कभी कुछ नहीं कहूँगी।"

डैरी ने अपना हाथ उसके घुटनों पर रख दिया, किन्तु वह न हिली, न डुली, मूर्ति-सी अँधेरे में बैठी रही।

"विट्टी, तुम चाहती क्या हो ?"

वह चुप रही, फिर सिर उठाया – डैरी की तरफ नहीं—बल्कि उससे परे, जैसे कहीं छतों पर छिटके तारों के बीच अपनी चाहना ढूँढ़ रही हो, लेकिन वहाँ कुछ भी नहीं था, निजामुद्दीन का स्टेशन, धुँधुआती बत्तियाँ, अप्रैल का आकाश—दिल्ली पर फैला हुआ।

विट्टी ने एक साँस ली और आँखें मोड़ लीं।

"तुम जानते हो; मैंने तुमसे कितनी बार कहा है।"

"मुझे नहीं मालूम; तुम बात-बात पर लड़ने लगती हो।"

"बात-बात पर नहीं—सिर्फ एक बात पर। तुम मुझसे तंग नहीं आ जाते ?"

"सुनो···" इस बार डैरी के स्वर में गुस्सा नहीं, सिर्फ सन्तप्त-सी जिज्ञासा थी, "तुम थियेटर छोड़ दोगी, तो करोगी क्या ?"

बिट्टी हल्के-से हिली जैसे कोई चीज देह में सिहरती हुई भुरभुरा जाती है। "मुझे नहीं मालूम डैरी, मैं सिर्फ दिल्ली छोड़ना चाहती हूँ।"

वह वाक्य कुछ देर अँधेरे में जमा रहा।

"मैं दिल्ली छोड़ना चाहती हूँ," उसने दुबारा कहा, जैसे दूसरी बार की गरमाई पहली बार के नंगे, ठिठुरते वाक्य को अपने में ओढ़ रही हो।

"क्या इलाहाबाद लौट जाओगी?"

"नहीं...वहाँ नहीं।"

"कहाँ जाओगी?"

"मुझे नहीं मालूम... और कहीं गयी तो तुम्हें नहीं बताऊँगी।"

"क्यों? मुझसे छिपकर भागने में शर्म आयेगी?"

बिट्टी ने आँखें ऊपर उठायीं।

"शर्म—तुमसे?" वह हँसने लगी, "नहीं, शर्म नहीं... मुझे तुमसे पूछने की जरूरत नहीं। तुमने सबकुछ देख लिया... बिहार, मरते हुए लोग, थियेटर... तुम सबकुछ जानते हो...तुम शायद नहीं जानते, मैं तुमसे कितनी छोटी हूँ... मैं खुद देखूँगी।"

"देखोगी?"

"कुछ भी...जो कुछ मेरे पल्ले पड़ेगा—सबको।"

"इससे तुम्हारी तकलीफ दूर हो जायेगी?" डैरी ने अजीब ठण्डी आवाज में कहा।

"क्या मतलब?"

"तुम दूसरों की तकलीफ दूर करोगी?"

"मैं समझी नहीं..." उसका स्वर थरथरा रहा था।

"तुम भिखारियों के साथ बैठोगी...मदर टैरेसा की तरह...तुम सोचती हो—बिट्टी कि तुम..."

किन्तु इसके आगे वह कुछ नहीं सुन सका; गिलास गिरने की आवाज... और दूसरे क्षण उसे बिट्टी की लपट-सी फूत्कारती आवाज सुनायी दी, पागल-सी बेतहाशा एक ही वाक्य को दुहराती हुई—"get out of here, get out of my house, get out, get out, get out..." और वह झटके से उठ बैठा—डैरी बार-बार अपने को बचाने के लिए उसका हाथ पकड़ने की कोशिश करते थे किन्तु हर बार बिट्टी हाँफती हुई पीछे हट जाती थी जैसे कोई कोढ़ी उसे छू रहा हो—"don't touch me, don't you ever dare to touch me..."

और डैरी डरकर सचमुच पीछे हट जाते और उनके पीछे हटते ही विट्टी दुबारा उन पर झपट पड़ती, उसके बाल खुलकर डैरी पर गिरने लगते, उनके चेहरे, आँखों को छिपा लेते और विट्टी की दबी भर्रायी आवाज़ हवा में उठकर फिर थरथराने लगती···"get out, get out of this place, get out..."

रेत उड़ रही थी, उसके भीतर, और वह काँप रहा था। पागल-सी इच्छा हुई, वह बिस्तर से उठ खड़ा हो, सोने का बहाना छोड़कर उनके बीच जा खड़ा हो, विट्टी को खींचकर डैरी से अलग धकेल दे, किन्तु वह बैठा रहा, अँधेरे और बुखार और चाँदनी में, उन दोनों की साँसें और सिसकियाँ सुनता हुआ···डैरी का रुँधा स्वर किसी भुतैली खोह से बाहर आ रहा था, "क्या कर रही हो, विट्टी, सुनो, वह उठ जायेगा, जानती हो, वह यहीं छत पर सो रहा है, विट्टी, विट्टी···" और तब विट्टी सचमुच रुक गयी, हाँफती हुई साँसों के बीच चेतना की एक लकीर कौंध गयी और तब डैरी ने काले अन्धड़ से बाहर निकलकर उसके झपटते, झिझोड़ते हाथों को थाम लिया, उसे अपने पास खींच लिया, उसके फड़फड़ाते होंठों पर अपना मुँह रख दिया मानो ऐसा करने से ऊपर उफनते हुए शब्द भिच जायेंगे, दब जायेंगे, किन्तु विट्टी रुकी नहीं, जैसे रेस में दौड़ता हुआ घोड़ा दौड़ खत्म होने के बाद भी कुछ दूर भागता रहता है, वैसे ही विट्टी के शब्द चुक जाने के बाद भी होंठों के बाहर फिसलते जा रहे थे, कमज़ोर, शिथिल, बेमानी, लेकिन एक लीक में बँधे हुए, अपने बवण्डर में घूमते हुए, दुहराते हुए—don't touch me, don't you dare touch me..."

किन्तु अब वह स्वयं डैरी को छू रही थी, अपनी तरफ समेट रही थी··· उसके भिंचे होंठ खुल रहे थे, डैरी के होंठों को अपने मुँह के अँधेरे में घेरते हुए, उनकी साँस को अपनी साँस में समोते हुए, एक चमकीली गरमाई के घेरे में, जहाँ न कोई उम्मीद होती है, न निराशा, न तसल्ली, न कोई भविष्य, न सुख, सिर्फ एक पाट खुल जाता है, झाड़ियों में अटका हुआ नाला फिर बहने लगता है. उस समय तक बहता रहता है जब तक कोई दूसरा पत्थर, कोई झाड़-चट्टान, कोई सन्देह, बीच राह में औंधा-पड़ा कटे सत्य का कोई पेड़ उसे दुबारा नहीं रोक लेता।

वे कुछ देर इसी तरह बैठे रहे। नाला बहता रहा। ऐसी ही रातों में पैन्थर आता होगा, लम्बी घास में लम्बे डग बढ़ाता हुआ—भूखा और बौख-लाया-सा। नाले के पास आकर ठिठक जाता होगा, गर्दन झुकाकर गट-गट पानी पीता होगा—वहाँ प्यास प्यास है, पानी पानी—बीच में कोई मरीचिका

नहीं, माया नहीं, दूसरे दिन उसके पैरों के निशान बन जाते होंगे—एक गवाही की तरह कि पिछली रात वह यहाँ आया था, सुस्ताया था, पानी पिया था··· लास्ट नाइट द पैन्थर केम एण्ड माई डॉग ब्हाइन्ड द होल नाइट···

मिसेज पंत के कुत्ते सचमुच चीख रहे थे, शायद डैरी की छाया को देखा होगा, नीचे की दीवार पर चाँदनी में हिलती हुई—वह नीचे झुककर बियर की खाली बोतलों और गिलासों को समेट रहे थे।

"इन्हें रहने दो—मैं उठा लूंगी।" बिट्टी ने उनका कन्धा पकड़कर उठा दिया और जब डैरी ने सिर उठाया, तो दोनों एक-दूसरे को भौंचक निगाहों से देखने लगे—मानो वे किसी स्वप्न से जाग गये हों, एक-दूसरे को पहली बार देख रहे हों—हालाँकि बदला कुछ नहीं था, वही डैरी की छितरी दाढ़ी, ऐनक, झिपझिपाती आँखें, वही बिट्टी—सिर्फ एक क्षण के लिए यह विस्मय रहा होगा—फिर बिट्टी ने डैरी का हाथ अपने गालों पर रख दिया, उनके हाथ से खुद अपने चेहरे को सहलाने लगी जैसे वह किसी खोयी हुई पहचान को दुबारा अपने पास बुला रही हो।

"डैरी!"

"क्या बिट्टी?"

"कुछ नहीं—मैं सिर्फ तुम्हारी आवाज सुनना चाहती थी।"

आँसुओं के बीच एक पीली-सी मुस्कराहट निकल आयी, मानो यह उनके बीच कोई पुराना खेल हो, अच्छे दिनों के तिनके, जिन्हें पकड़कर वे डूबते दिनों में ऊपर आ जाते थे।

डैरी सीढ़ियाँ उतरने लगे, अपनी मोटर-साइकिल स्टार्ट की, किन्तु उस रात बिट्टी और दिनों की तरह भागते हुए मुंडेर तक नहीं गयी, वहीं छत पर बैठी रही, गिलास और बोतलों और गमलों के बीच, कुछ सोचती हुई, और तब बिट्टी को देखते हुए उसे पहली बार खयाल आया, लोगों के बारे में हम इतना कुछ जानते हैं—सिर्फ यह नहीं जानते कि वे क्या सोच रहे हैं?

९

टप, टप—कोई जमीन पर पैरों को थपथपाता हुआ भागे जा रहा था, ी घास और पेड़ों की छाँह में, अपने पंजों के सुराग उसकी पलकों पर ाता हुआ। वह खुली दुपहर में जाग जाता, ज्वर के पीले ज्वार में ऊपर-चे डोलता हुआ। वह रास्ते से हट जाता, कोने में दुबक जाता, प्लीज़ डोण्ट च मी, प्लीज़ डोण्ट, काँपता रहता, उस समय तक काँपता रहता, जब तक भागते हुए जन्तु की साँस उसके ऊपर से न गुजर जाती और तब वह अचानक शान्त हो जाता, देह शिथिल पड़ जाती, दुपहर के घनघोर सन्नाटे में नल की बूँदें टप, टप करतीं और निजामुद्दीन के स्टेशन पर कोई ट्रेन धड़धड़ाते हुए गुजर जाती, मिसेज़ पन्त के कुत्ते रिरियाने लगते और वह झपटकर उठ बैठता, पसीने में लथपथ, मैं कहाँ हूँ, वह सोचने लगता, यहाँ या वहाँ ?

उस रात जो बुखार आया, वह तीन रोज़ चलता रहा। होश और बेहोशी के बीच चक्कर लगाता हुआ, पता नहीं, वह कहाँ-कहाँ चला जाता। एक बार उसे लगा, जैसे वह अस्पताल पहुँच गया है। पूरी दुपहर वह उनके पास बैठा रहा है, उन्हें देखता रहा है। जब वह साँस लेतीं, पेट में धँसी रबड़ की नली हिलने लगती। वह अस्पताल की दुपहर थी। शाम को विट्टी कालेज से लौट आती, तुम अब जाओ, मैं बैठूँगी और वह उठ जाता था, गफलत में डूबी माँ को बिस्तर पर छोड़कर लौट आता था।

फिर याद आता, वह अब नहीं हैं। वह मर गयीं। वह गले के कैन्सर से मरी थीं और आखिरी दिनों में एक बूँद पानी की हलक में नहीं जाती थी। पे में घुपी कुप्पी से पानी उँडेल दिया जाता और वह बूँद-बूँद टपकता हुआ भीत जाता था और वह पथरायी आँखों से यह तमाशा देखती थीं। चेहरे पर यात की एक लकीर खिची रहती, जिस पर उनकी साँसें च्यूँटियों की लम्बी कत सी रेंगती रहती। रात होते ही वह आँखें खोल देतीं, दिन-भर की बदहव डेलों के बाहर निकल आतीं—

"मुन्नू, मुझे एक सपना आया।"

"कैसा सपना ?"

"मुझे लगा, मैं गटागट कोकाकोला पी रही हूँ···बड़ा ठण्डा, बर्फ में लिपटा हुआ।"

बिट्टी मुंह फेर लेती और वह खिड़की के बाहर झांकने लगता, जहां खून और मवाद की लिपटी पट्टियां बिखरी रहती। वह आँखें मूंद लेती और बिट्टी धीरे-धीरे उनकी हथेलियों को सहलाने लगती, चाची, कुछ कहो, देखो, मैं यहां हूँ। वह आँखें खोल देती, एकटक ददवाजे की ओर देखती रहती जैसे किसी की बाट जोह रही हों, बिट्टी, मैं कोशिश करती हूँ, लेकिन हर बार पीछे हट जाती हूँ।

कैसी कोशिश···वह कहां जाने की कोशिश करती थी, कहां जाकर लौट आती थीं ? दिन और रात के बीच जरूर कोई ऐसा लमहा आता होगा, जहां वह निढाल होकर रुक जाती होंगी, पीछे देखती होगी कोई आ तो नहीं रहा ? वह बाट जोह रही थी। वह आँखें मूंदे लेटी रहती और हम सोचते वह सो रही है।

लोग सोते हुए कैसे मर जाते हैं ? वे कोई सपना देख रहे होते हैं और बीच में अचानक रील टूट जाती है, और उन्हें लगता है, यह भी कोई सपना है, अस्पताल की खिड़कियां, खिड़कियों से आती धूप, कुर्सी पर ऊँघते बाबू, बरामदे में बैठी बिट्टी और मैं, उनका लड़का, फर्श पर चलती कीड़ियां, ये सब और सारी दुनिया, अपना बचपन और पुराने घरों के कोने और अपने मरे हुए मां-बाप, ये सब और अपना बिस्तर और बाहर फैली दुपहर, ये सपनों के बीच सपने हैं और जब वे खत्म हो जाते हैं, छितरा जाते हैं, धुन्ध में धुन्ध हो जाते हैं, तब लोग कहते हैं, वह मर गयी, वह दुपहर को मरी थीं और उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, वह बड़ी सौभाग्यवान थी, क्योंकि आखिरी घड़ी में सब लोग उनके पास बैठे थे···सिर्फ बिट्टी उन्हें झिझोड़ रही थी, हिला रही थी, 'चाची, तुम्हें कुछ चाहिए, देखो, मैं यहां हूँ !'

वह आँखें खोल देता—छत पर रात दिखायी देती। उसे हैरानी होती, दुपहर कहां चली गयी ? क्या वह सोते हुए अस्पताल की दुपहर को लांघकर दिल्ली के अँधेरे में चला आया था ? हो सकता है, वह भी कहीं लांघकर चली गयी हों, सिर्फ बिट्टी को मालूम हो, क्योंकि उनके मरने के बाद बिट्टी ने घर छोड़ा था, और जब कभी वह दीवार पर मदर टेरेसा का फोटो देखता—एक बूढ़ी क्लान्त औरत, कँगली लड़कियों के साथ बैठी हुई, तो उसे चाची की बात

९

, टप, टप—कोई जमीन पर पैरों को थपथपाता हुआ भागे जा रहा था,
वी घास और पेड़ों की छाँह में, अपने पंजों के सुराग उसकी पलकों पर
ड़ाता हुआ। वह खुली दुपहर में जाग जाता, ज्वर के पीले ज्वार में ऊपर-
ीचे डोलता हुआ। वह रास्ते से हट जाता, कोने में दुबक जाता, प्लीज़ डोण्ट
टच मी, प्लीज़ डोण्ट, काँपता रहता, उस समय तक काँपता रहता, जब तक
भागते हुए जन्तु की साँस उसके ऊपर से न गुज़र जाती और तब वह अचानक
शान्त हो जाता, देह शिथिल पड़ जाती, दुपहर के घनघोर सन्नाटे में नल की
बूँदें टप, टप करतीं और निज़ामुद्दीन के स्टेशन पर कोई ट्रेन धड़धड़ाते हुए गुज़र
जाती, मिसेज़ पन्त के कुत्ते रिरियाने लगते और वह झपटकर उठ बैठता,
पसीने में लथपथ, मैं कहाँ हूँ, वह सोचने लगता, यहाँ या वहाँ ?

उस रात जो बुखार आया, वह तीन रोज़ चलता रहा। होश और बेहोशी
के बीच चक्कर लगाता हुआ, पता नहीं, वह कहाँ-कहाँ चला जाता। एक बार
उसे लगा, जैसे वह अस्पताल पहुँच गया है। पूरी दुपहर वह उनके पास बैठा
रहा है, उन्हें देखता रहा है। जब वह साँस लेतीं, पेट में धँसी रबड़ की नली
हिलने लगती। वह अस्पताल की दुपहर थी। शाम को बिट्टी कालेज से लौट
आती, तुम अब जाओ, मैं बैठूँगी और वह उठ जाता था, गफलत में डूबी माँ
को बिस्तर पर छोड़कर लौट आता था।

फिर याद आता, वह अब नहीं हैं। वह मर गयीं। वह गले के कैन्सर से
मरी थीं और आखिरी दिनों में एक बूंद पानी की हलक में नहीं जाती थी। पे
में घुपी कुप्पी से पानी उँडेल दिया जाता और वह बूंद-बूंद टपकता हुआ भीत
जाता था और वह पथरायी आँखों से यह तमाशा देखती थीं। चेहरे पर यात
की एक लकीर खिंची रहती, जिस पर उनकी साँसें च्यूँटियों की लम्बी कत
सी रेंगती रहती। रात होते ही वह आँखें खोल देतीं, दिन-भर की बदहव
डेलों के बाहर निकल आती—

"मुन्नू, मुझे एक सपना आया।"

"कैसा सपना ?"

"मुझे लगा, मैं गटागट कोकाकोला पी रही हूँ···बड़ा ठण्डा, बर्फ में लिपटा हुआ।"

बिट्टी मुँह फेर लेती और वह खिड़की के बाहर झाँकने लगता, जहाँ खून और मवाद की लिपटी पट्टियाँ बिखरी रहतीं। वह आँखें मूंद लेती और बिट्टी धीरे-धीरे उनकी हथेलियों को सहलाने लगती, चाची, कुछ कहो, देखो, मैं यहाँ हूँ। वह आँखें खोल देती, एकटक दरवाजे की ओर देखती रहती जैसे किसी की बाट जोह रही हों, बिट्टी, मैं कोशिश करती हूँ, लेकिन हर बार पीछे हट जाती हूँ।

कैसी कोशिश···वह कहाँ जाने की कोशिश करती थी, कहाँ जाकर लौट आती थी ? दिन और रात के बीच जरूर कोई ऐसा लमहा आता होगा, जहाँ वह निढाल होकर रुक जाती होगी, पीछे देखती होंगी, कोई आ तो नहीं रहा ? वह बाट जोह रही थी। वह आँखें मूंदे लेटी रहती और हम सोचते वह सो रही है।

लोग सोते हुए कैसे मर जाते हैं ? वे कोई सपना देख रहे होते है और बीच मे अचानक रील टूट जाती है, और उन्हें लगता है, यह भी कोई सपना है, अस्पताल की खिड़कियाँ, खिड़कियों से आती धूप, कुर्सी पर ऊँघते बाबू, बरामदे मे बैठी बिट्टी और मैं, उनका लड़का, फर्श पर चलती कीड़ियाँ, ये सब और सारी दुनिया, अपना बचपन और पुराने घरो के कोने और अपने मरे हुए माँ-बाप, ये सब और अपना बिस्तर और बाहर फैली दुपहर, ये सपनों के बीच सपने हैं और जब वे खत्म हो जाते हैं, छितरा जाते हैं, धुन्ध में धुन्ध हो जाते हैं, तब लोग कहते हैं, वह मर गयी, वह दुपहर को मरी थीं और उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, वह बड़ी सौभाग्यवान थीं, क्योंकि आखिरी घड़ी मे सब लोग उनके पास बैठे थे···सिर्फ बिट्टी उन्हें झिंझोड़ रही थी, हिला रही थी, 'चाची, तुम्हें कुछ चाहिए, देखो, मैं यहाँ हूँ !'

वह आँखें खोल देता—छत पर रात दिखायी देती। उसे हैरानी होती, दुपहर कहाँ चली गयी ? क्या वह सोते हुए अस्पताल की दुपहर को लाँघकर दिल्ली के अँधेरे में चला आया था ? हो सकता है, वह भी कहीं लाँघकर चली गयी हों, सिर्फ बिट्टी को मालूम हो, क्योंकि उनके मरने के बाद बिट्टी ने घर छोड़ा था, और जब कभी वह दीवार पर मदर टैरेसा का फोटो देखता—एक बूढ़ी क्लान्त औरत, कँगली लड़कियों के साथ बैठी हुई, तो उसे चाची की बात

आती, फकीरों जैसे कपड़े पहनती है, ईश्वर जाने इसका क्या होगा ?

ह उठकर बैठ गया—अचानक हल्का-सा महसूस हुआ, जैसे बुखार की

सीने के परनालों में वह गयी है।

"विट्टी !"

वह छत से भीतर आयी, तो कुर्त्ते की आस्तीनें चढ़ी थीं, जूड़े को तौलिये

बाँध रखा था, हाथों पर नीली नसें पानी में चमक रही थीं।

"कहाँ थीं तुम ?"

"बाहर कपड़े सुखा रही थी—कुछ चाहिए ?"

वह हाथ पोंछते हुए भीतर आयी, उसके सिरहाने आकर बैठ गयी।

"विट्टी," उसने कहा। "मैं एक सपना देख रहा था।"

"कैसा सपना ?"

"हम अस्पताल के गलियारे में बैठे थे। वह सो रही थीं।"

विट्टी के हाथ उसके माथे पर ठिठक गये। पसीने में भीगे बाल हवा में सूख रहे थे।

"तुम्हारी चिट्ठी आयी है।" उसने धीरे से कहा।

"कब ?"

"दुपहर को···तुम सो रहे थे। सुनोगे ?"

उसने सिर हिलाया।

"तुम्हें इलाहाबाद बुलाया है।"

"मुझे मालूम है।" उसने कहा।

घर लौटने के दिन पास आ रहे थे। वे चुप रहते थे। वे उसके बारे में कोई बात नहीं करते थे।

वह अप्रैल की रात थी, हल्की-सी गर्म, जैसे देह का बुखार कहीं हवा में है, और पेड़ निश्चल खड़े थे। ऐसी रातों में विट्टी बरसाती के दरवाजे, खिड़किय खोल देती और उसे लगता वह जहाज़ के किसी केबिन में लेटा है, बाहर का अँधे समुद्र-सा जान पड़ता और निजामुद्दीन का स्टेशन एक टिमटिमाता ला हाउस। वह लेटे-लेटे सोचने लगता, कहीं दूसरे केबिन होंगे, इरा का होस्ट और नित्ती भाई का दफ़्तर, जहाँ वह रात को सोते थे और तब उसे वह बँग याद आता, एक टीला और झाड़ियाँ और पेड़ पर बैठी वह पागल लड़की की बहिन और डैरी, जो उस रात चले गये—और वापिस नहीं लौटे थे। बुखार उतर रहा था। शायद इसीलिए उसे जहाज़ की याद आयी थी

' ... चिथड़ा सु

कि उतरते बुखार में सब चीजें हिलती-सी जान पड़ती और बिट्टी मूढ़ों का पार्टीशन हटा देती—खुद अपना बिस्तर उसके बिस्तर से सटा देती और बोलती कुछ भी नहीं, कपड़े टाँगकर भीतर आ जाती और देर तक किचन का नल खुला रहता और उसे नींद आने लगती और फिर बत्ती बुझ जाती, लेकिन रोशनी की एक परत अँधेरे पर जमी रहती—एक हिस्सा तारों से आता और दूसरा खुद भीतर की आँखों से, जो अँधेरे को पहचान को रोशनी में ढाल देता और उसमें पता चल जाता, कोई पास लेटा है, साँस ले रहा है, सोच रहा है और यही तीसरी परत होती, जिसमें न चमक होती, न अँधेरा, सिर्फ सोच की उदास और मूक महक, जो देर तक हवा में तिरती रहती। वह सोने से पहले का सोना होता, नींद के बीच नींद—नीचे से मोटर-साइकिल की आवाज सुनायी देती और वह चौंक जाता, प्रतीक्षा में आँखें खोले रहता किन्तु जीने की सीढ़ियाँ सूनी पड़ी रहतीं और ऊपर कोई न आता।

"तुम सो रही हो ?"

"नहीं।" उसने करवट ली।

"सुनो, क्या उन्होंने बहुत दुख भोगा था ?"

"पता नहीं, मुन्नू।" उसने कहा।

"मरे हुए लोगों का दुख कहाँ जाता है ?" उसने पूछा।

वह चुप लेटी रही और उसने सोचा, कहीं जरूर रहता होगा। पेड़ों पर। चलते हुए लोगों की छाया में। मकड़ी के जाले में झूलता हुआ।

बिट्टी ने साँस ली और फिर धीरे से कहा, "जानते हो, जब वह अस्पताल में थी, तो मैं क्या सोचती थी ? अगर कोई इतना कष्ट झेलकर दुनिया छोड़ता है, तो वे लोग जो दुनिया में रह जाते हैं, उन्हें कुछ करना चाहिए।"

"क्या बिट्टी ?"

"हमें किसी दूसरी तरह जीना चाहिए।"

वे अँधेरे में लेटे रहे।

"क्या तुम डैरी से इसीलिए लड़ रही थी ?" उसने कुछ सोचते हुए पूछा।

"नहीं, इसलिए नहीं।"

'फिर ?"

"मैं पाखण्डी हूँ, इसलिए।"

"तुम कौन हो ?"

"वे लोग, जो कहते कुछ हैं और करते कुछ और हैं।"

"बिट्टी, तुमने क्या इसीलिए घर छोड़ा था ?"

"किसलिए ?"

"तुम···" वह एक क्षण झिझका। "तुम तकलीफ़ में जीना चाहती हो।"

वह हँसने लगी। अँधेरे में साफ और क्रूर हँसी, जो सब परतों को छील जाती है।

"मुझे कोई तकलीफ नहीं है—बरसाती, किताबें, रिकार्ड प्लेयर, मेरे पास सबकुछ है। मुन्नू, गरीबी का बहाना वही करते हैं, जो असल में गरीब नहीं हैं। मेरे पास सबकुछ है, सिर्फ शर्म नहीं है।"

"कैसी शर्म ?"

"सबकुछ छोड़ने की। वे हर महीने मुझे पैसे भेजते हैं और मुझमें इतनी शर्म नहीं कि उन्हें लेने से इन्कार कर सकूँ।"

"बिट्टी," उसने कहा। "तुम किसी से कुछ नहीं ले सकतीं ?"

"मैं उसके काबिल नहीं हूँ।"

"लेकिन तुम्हें नहीं मालूम, तुम दूसरों को कितना दुख देती हो ?"

"मुझे मालूम है, लेकिन तुमने कभी सुख देखा है ?"

वह एक क्षण चुप रही, फिर धीरे से कहा, "ऐसा सुख, जिसके बारे में कोई कह सके, वह उसके काबिल है ?"

कुछ देर केवल उसकी साँस सुनायी देती रही। फिर उसकी आवाज सुनायी दी, इतनी धीमी, मानो वह उसकी साँस का स्वर हो।

"तुम्हें कभी वह बौना याद आता है ?"

"नुमायश में जिसे देखा था ?"

"और कहाँ ?" वह धीरे-से हँसी। "हमने एक चवन्नी में उसका सुख देखा था।"

"क्या वह असली था ?"

"सुख या बौना ?"

"नहीं," उसने कहा। "वह बुढ़िया, जो सिंहासन पर बैठी थी।"

"पता नहीं···," बिट्टी ने दरवाजे की तरफ देखा, जैसे वहाँ कोई खड़ा हो। 'वह सबकुछ जानती थी।"

"और बौना ?"

"वह भोगता था। बुढ़िया देखती थी।"

बाहर कोई नहीं था···सिर्फ चाँदनी देहरी को लाँघकर उनके बिस्तरों

पर चू रही थी। छतों पर टेलीविजन के पोल हवा में हिल रहे थे।

वे लेट गये। हवा उठी थी। छत पर झुका सेमल का पेड़ खड़खड़ा जाता था। दो-चार पत्तियां अंधेरे में झिर-झिर करती झर जाती थीं।

कुछ देर बाद स्लीपिंग-बैग हिला, मुंह बाहर निकला, छोटी-सी आवाज बाहर आयी, "मुन्नू?"

"हूं!" उसने करवट ली।

"तुम क्या सोचते हो, अगर वह जिन्दा होती, तो मुझसे बहुत निराश हो जाती?"

"बिट्टी," उसका स्वर न जाने क्यों बहुत रुंधा-सा हो आया। "वह तुम्हें बहुत मानती थी।"

"मुझे नहीं···वह लड़की कोई और थी।"

"और तुम ··तुम कौन हो?"

"मैं—" उसने बहुत धीमे से कहा। "मैं उसे ही ढूंढने दिल्ली आयी थी।"

१०

तुम आओगे ? हाँ, मैं आऊँगा। तुम्हें मालूम है, कर्जन रोड, हाँ मुझे मालूम है। मुझे कोई मुश्किल नहीं पड़ेगी। मैं वहाँ कई बार गया हूँ, प्रीमियर पास आ रहा था और विट्टी सुबह से शाम बाहर रहती थी। वह अमरीकी लाइब्रेरी में आकर बैठ जाता था। वहाँ ढेरों किताबें थीं—लेकिन उनमें उसे दिलचस्पी नहीं थी। वह रेफरेन्स-बुक्स के एक कोने में बैठ जाता था—वहाँ लम्बे शीशे की खिड़की थी। पीछे एक पीपल का पेड़ था, जिसकी नंगी शाखाएँ हवा में झूलती थीं। किन्तु शीशे के पीछे न हवा सुनायी देती थी, न शाखाओं का शोर। वहाँ शान्ति थी। ठण्डक, हल्का-सा अँधेरा, जिसके भीतर बैठकर वह जाने के दिन गिनता था।

मैं वहीं बैठूंगा। तुम आसानी से मुझे देख सकती हो !

मुन्नू, तुम अच्छे लड़के हो; मैं तुम पर विश्वास कर सकती हूँ ?

हाँ, तुम मुझ पर विश्वास कर सकती हो। लेकिन मैं अच्छा नहीं हूँ। मैं लड़का भी नहीं हूँ। मैं बड़ा हो रहा हूँ। मैं आदमी-सा बन गया हूँ। मैंने लम्बी बीमारी पार की है। मुझे नहीं मालूम था, बीमारी के भीतर कितनी आँखें खुल जाती हैं। लेकिन दुनिया सिकुड़ जाती है, एक चमकती नोंक पर थिर हो जाती है, गले पर ठण्डे चाकू-सी, जिसका सच उस अजीब लड़की ने डैरी के लान पर दिखाया था। बीमारी के लम्बे दिनों में वह अक्सर उस लड़की के बारे में सोचा करता था। क्या वह अब भी पेड़ों पर चढ़ती है परिन्दों को डराती है, डैरी के कमरे का पहरा देती है ?

वह मुझे अब देखेगी तो बहुत हैरान हो जायेगी। वह खुश भी होगी। मैंने उसकी बात मान ली है। वह चाहती थी, मैं घर लौट जाऊँ, यहाँ मेरी जगह नहीं है, न नाटक के भीतर, न आडिटोरियम में। वह खतरे को जानती थी, वह उसके भीतर रहती थी। वह मुझे चेतावनी-सी देना चाहती थी। उसने मुझे चूमा था, उसने मुझे धकेल दिया था—बाहर अँधेरे में—ताकि मैं उनके

खतरे से छुटकारा पा सकूँ ।

कैसा खतरा ? अप्रैल की उस दुपहर में सबकुछ निष्कलंक, निर्दोष जान पड़ता था । वह लायब्रेरी के एक उजाड़ कोने में बैठा था, जहाँ बहुत कम लोग आते थे । बेरोजगार किस्म के आदमी, जो खाली सड़कों से ऊबकर यहाँ घड़ी-दो घड़ी सुस्ताने आ बैठते थे । वे अपनी मेजों पर एनसाइक्लोपीडिया या तस्वीरों की कोई सुरक्षित और स्थूल किताब खोल लेते, जिसके भीतर बाहर का जोखिम और शोर और बेकार की भटकन कुछ देर के लिए ओझल हो जाती । एक दूसरे टेबल पर कुछ लड़कियाँ बैठी थीं—'टाइम' और 'न्यूज वीक' के पन्ने पलट रही थीं, फुसफुसाते हुए एक-दूसरे से कुछ कहती थीं, हँसने लगती थीं, भेद-भरी आँखों से कभी उसे देख लेती थीं, कभी खिड़की से बाहर—जहाँ पीपल का नंगा पेड़ खड़ा था ।

शीशे का रंग कुछ ऐसा था, कि बाहर की धूप भी स्याह दिखायी देती थी । लगता था, जैसे वह सर्दी की शाम हो । किन्तु यह भ्रम था । बाहर धूप फैली थी । वह अप्रैल का महीना था । दिल्ली की एक दुपहर । वह आ रही थी ।

उसे नहीं मालूम, वह उससे क्या चाहती थी ? फोन पर उसने कुछ नहीं बताया । सबकुछ अचानक हो गया था । बिट्टी बाहर थी और वह बरसाती में अपनी चीजों को इकट्ठा कर रहा था । सूटकेस में सर्दी के उन कपड़ों को रख रहा था, जिनकी अब कोई जरूरत नहीं थी । वह चाहता था, श्रीगियर के पहले ही अपनी चीजों को पैक कर डाले, उसे यह भी डर था, कि यदि दुबारा बुखार आना शुरू होगा, तो वह कुछ भी नहीं कर सकेगा । वह उससे पहले ही तैयार हो जाना चाहता था ।

वे रिहर्सल के अन्तिम दिन थे । वे कुछ शुरू के दिनों से लगते थे, जब वह इलाहाबाद से आया था । हरदम लोगों का आना-जाना बना रहता । थियेटर का बहुत-सा सामान बिट्टी की बरसाती में जमा होता गया था—उन्हें लेने के लिए कभी डैरी आते, कभी इरा, कभी दूसरे लड़के, जिन्हें केवल एक-दो बार स्टूडियो में देखा था । वे उसे बिस्तर पर लेटा देखते, वह उन्हें देखता, फिर वे चले जाते और कमरा खाली रह जाता ।

वह अकेला रह जाता । वह छत पर आरामकुर्सी पर बैठ जाता, धीरे-धीरे अँधेरे को आने देता । बहुत दिन पहले के दिन याद आते, जब वह एक बार बिट्टी के साथ नित्ती भाई के दफ्तर में गया था । उसे हैरानी होती थी, सब लोग यहाँ बिट्टी से मिलने आते थे—सिर्फ नित्ती भाई नहीं । आश्चर्य बात

उन्हें स्टूडियो में देखा था, अँधेरे हाल में अकेले बैठे हुए ।

आखिरी बार ? नहीं, यह नहीं । इलाहाबाद लौटने से पहले वह सबसे एक बार मिलेगा । पहले वे सिर्फ उसे विट्टी का कज़िन मानते थे, लेकिन पिछले दिनों विट्टी के दोस्तों में उसकी एक अद्‌भुत जगह बन गयी थी । वह सबकुछ देखता था, और उन्हें मालूम था, कि वह उन्हें देख रहा है । वह न तो इतना छोटा था कि उसे टाला जा सके, न इतना बड़ा, कि उनके बीच परेशानी बन सके । वह एक मूक गवाह-सा बन गया था, तटस्थ नहीं, क्योंकि गवाह कभी तटस्थ नहीं होता । लेकिन जिम्मेवार भी नहीं; उसकी गवाही पूरी नहीं थी क्योंकि देखना कभी पूरा नहीं था । वह जब अर्से बाद विट्टी के दोस्तों को देखता तो एक अजीब-सी दहशत उसे पकड़ लेती—उसे लगता जैसे उनके साथ कुछ हो गया है, जिसे वह नहीं जानता । वह जहाँ से उन्हें देखना शुरू करता, वहाँ वे बहुत पहले खत्म हो चुके होते; वह जहाँ से उन्हें पकड़ता, वहाँ खाली जगह होती; वे कहीं और होते । सिर्फ रिहर्सल देखते हुए उसे लगता था कि वे जीवित हैं, विट्टी, इरा, डैरी···किन्तु ज्योंही वे स्टेज से उतरकर अपनी ज़िन्दगी में आते वह उन्हें खो देता । वह समझ नहीं पाता था, कौन-सी ज़िन्दगी असली है, यहाँ दुनिया की रोशनी में या वहाँ, स्टूडियो के अँधेरे में ?

फिर बीमारी के दिन आये—लम्बे अकेले दिन—जब उसे एक नयी चीज़ पता चली । नयी नहीं, एक बहुत पुरानी चीज़, जिसे वह चलते-फिरते कभी नहीं देख पाया था, लेकिन जो हमेशा उसके साथ थी—और वह यह, कि देखने के लिए उसे कुछ नहीं देखना चाहिए । उसे अँधेरे में रहना चाहिए··· फिर धीरे-धीरे वे चीजें तुम्हारे पास आयेंगी, जो लोगों के साथ हुई हैं । वे तुम्हें सबकुछ बता देंगी, अगर तुम सचमुच अँधेरे में हो, सचमुच बीमार हो, सचमुच अकेले हो । ज़रा सुनो···

सुनते हो ? कोई सीढ़ियाँ चढ़ रहा है । तुम्हारे पास आ रहा है ।

"आपका फोन है ।"

मिसेज़ पन्त का पहाड़ी नौकर उसके सामने खड़ा था ।

"मेरा ?"

"जी, आपका ।"

वह नीचे आया । मिसेज़ पन्त का फोन गलियारे में रहता था और उसकी घण्टी ऊपर तक सुनायी देती थी । घर खाली था । वह अपने कुत्तों के साथ बाहर टहलने गयी थीं । सिर्फ बरामदे की बत्ती जल रही थी ।

रिसीवर उठाया, तो कुछ देर तक कुछ सुनायी नहीं दिया। शायद लाइन कट गयी थी। वह फोन रखनेवाला ही था कि कहीं दूर से एक महीन आवाज सुनायी दी।

"मुन्नू ?"

"कौन ?"

"मैं इरा हूँ, तुम इतनी देर से कहाँ थे ?"

कुछ देर चुप्पी रही। उसने सोचा, वह कुछ कहेगी, किन्तु उसकी जगह फोन का सन्नाटा बोलता रहा। आखिर उससे नहीं रहा गया।

"बिट्टी यहाँ नहीं है।" उसने कहा।

"नहीं, बिट्टी नहीं···मैंने तुम्हें फोन किया था।"

"मुझे ?"

"हाँ, कल मुझसे मिल सकते हो ?"

"तुमसे ?" वह एक क्षण ठिठका रहा, "कहाँ ?"

"अमरीकन लायब्रेरी में···मैं दुपहर को आऊँगी।"

वह पूछना चाहता था, किसलिए ? लेकिन उसके मुँह से निकला, "मैं आऊँगा।"

"तुम्हें मालूम है, कस्तूरबा मार्ग ? पहले उसका नाम कर्जन रोड था!"

"हाँ, मुझे मालूम है।"

उसने सोचा, अब वह रिसीवर रख देगी, किन्तु दुबारा उसकी आवाज सुनायी दी, "सुनो,···बिट्टी से कुछ मत कहना।"

वह कुछ कह पाता, इससे पहले ही उसने कहा, "मुन्नू, तुम अच्छे लड़के हो!"

वह शायद हँसी थी, एक अजीब व्यंग्यात्मक-सी हँसी, जो फोन के भीतर भयानक-सी सुनायी देती थी। उसने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन फोन कट गया था। वह जा चुकी थी।

वह खड़ा रहा। कहीं कुछ गलत था। एक काले अपशगुन-सा, जो पंख फड़फड़ाता हुआ सिर पर बैठ जाता है, हाथ लगाओ, तो कुछ भी नहीं। क्या था वह; कौन-सी वह नियति थी, जिसने फोन के भीतर से उसे निहारा था ?

उस रात वह देर तक जागता रहा। बाहर बूँदाबाँदी हो रही थी, अप्रैल की बारिश, जिसमें बूँदें एक साथ, चमकीली लाइन में गिरती रहती हैं। बहुत रात गये बिट्टी आयी थी, पानी में भीगी हुई। उसने एक बार उसे देखा, फिर चुप-

…बाथरूम में चली गयी। यह भी नहीं पूछा, इतनी देर रात तक वह कैसे …ग रहा था। उस दुपहर के बाद वह कुछ नहीं पूछती थी, जब से बाबूजी …ी चिट्ठी आयी थी। वह कभी-कभी उसके बँधे हुए सामान, सूटकेस, किताबें …ो देख लेती,—उन चीज़ों को बटोर लाती, जिन्हें वह पैक करना भूल गया था—लेकिन कहती कुछ नहीं थी। उसने अभी तक उससे यह भी नहीं पूछा था, वह कब जा रहा है। न उसने बताने का साहस किया था। उनके बीच इलाहाबाद कुछ वैसा ही निषिद्ध विषय बन गया था, जैसे डैरी। उस रात वे बाद न कभी वह डैरी की बात करती थी, न इलाहाबाद जाने की।

वह भी कुछ नहीं पूछता था। इतनी रात तक वह कहाँ रहती है, कहाँ आती है?

उसको रह-रहकर बाबू की बात याद हो आती—बिट्टी की जिन्दगी में दखल मत देना; वहाँ ऐसे रहना, जैसे तुम हो ही नहीं। होकर भी नहीं होना, … पिछले तीन महीनों में उसने यह सीखा है, कोशिश की है कि अपने को एक सिफ़र में बदल डाले, उस बन्द घड़ी की सुई की तरह, जो एक जगह ठहर… जाती है; हिलाओ, तो भी नहीं हिलती।

लेकिन उस रात किसी ने मुझे हिलाया था। मैं दखल नहीं दे रहा थ… सिर्फ एक नम्बर से उठकर दूसरे नम्बर पर आ बैठा था। इस क्षण यदि व… अचानक आ जाते, तो मैं उनसे कहता, आपने बहुत गलती की। आपको क… …ाहिए था, मुन्नू, वहाँ मत जाओ। कहीं मत जाओ। तुमने माँ को मरते… देखा था, सो समझ लो, तुमने सबकुछ देख लिया। अब तुम्हारी ज़िन्दगी… अस्पताल की एक दुपहर को दुहराती जायेगी।

आपको मुझे दिल्ली नहीं भेजना चाहिए था। आपको कहना चा… कुछ मत देखो क्योंकि जो देखते हैं, वे दखल न भी दें, दूसरों की छाय… एक जूठा और झूठा दुख उठाते रहते हैं। आप अगर इस समय आ… देखते मैं बदला नहीं हूँ; सिर्फ मैं अस्पताल की दुपहर की दूसरी… आया हूँ; यहाँ मैं अँधेरे में लेटा हूँ, बाहर बारिश हो रही है; शाम… का फोन आया था, वह मेरे भीतर दर्ज है, वह मेरे भीतर है और मैंने… पर दर्ज कर लिया है; हाँ, मैं अँधेरे में लिख लेता हूँ, यह डायरी… इसीलिए दी थी; वह सोचती थी, जो लिखता है, वह अपने पर… जो सोच सकता है, वह प्रायश्चित-सा कर लेता है।

यही एक नोटबुक है, जिसे मैंने अभी तक सामान में नहीं…

आपके लिए सँभाल कर रखा है। कभी-कभी मुझे एक सुखद आशा बँधती है, कि मेरे मरने के बाद भी आप जीवित रहेंगे। यह कोई अनहोनी घटना नहीं होगी, अनेक बाप अपने लडकों को घाट तक पहुँचा आते हैं। लौटकर आप यह डायरी देखेंगे, पहले पन्ने पर माँ का डेडीकेशन होगा, उसके परे अंग्रेज मिशनरी के संस्मरण, जिन्हे मैंने अनेक पन्नों पर टीपा है, फिर आप कुछ पन्ने पलटकर देखेंगे, मेरी दिल्ली की डायरी और आप सोचेंगे, कैसा लडका था यह, कभी मिशनरी के साथ जाता था, कभी पैन्थर के साथ, लेकिन जल्दी ही आपको अपनी भूल पता चलेगी, इन पन्नों मे न घूमता जानवर है, न बिहार में भटकते हुए डैरी, न मदर टैरेसा के भूखे-नगे भिखारी—ये सिर्फ मैला परदा है, जिन पर मेरे दिल्ली के दिन बीते थे, जब बरसों पहले आपने मुझे यहाँ भेजा था और तब आप एक-एक पन्ने को पार करते हुए इस क्षण पर आ ठिठकेंगे, जो आज है, अब है, यह बरसाती, यह रात, यह बारिश, और मैं आपकी अँगुली पकड़कर कहूँगा, चलिए, मेरे साथ आइए, सिर्फ किचन की देहरी तक, देखिए—वहाँ कौन बैठा है ?

डरिए नहीं, यह गुजरा हुआ समय है और मैं बहुत पहले मर चुका हूँ और आप असली दुनिया में नही, मेरी डायरी पर चल रहे हैं; आप जहाँ चाहे, रुक सकते हैं, डायरी बन्द करके मुझसे छुटकारा पा सकते हैं, लेकिन मुझे मालूम है, अब आप मुडना नही चाहेंगे, आप उस लड़की को देख रहे हैं, जो रसोई के सन्नाटे में अकेली बैठी है, आप इलाहाबाद के स्टेशन पर उसे छोडने आये थे जब चाची खम्बे के पीछे मुँह छिपाकर रो रही थी। आप देहरी पर खडे हैं ?···मैं तो हर रोज देखता हूँ, जब वह पी रही होती है और मैं सोचता हूँ, ये लोग जो अकेले में पीते होगे कुछ वैसे ही होते होंगे जो अपने से अकेले मे बोलते हैं. लेकिन मैं भीतर नहीं जाता, मुझे बिट्टी की यह दुनिया बहुत पवित्र-सी जान पड़ती थी, रसोई की मेज, मेज पर रखा उसका गिलास, जैसे कुछ लमहों के लिए उसने बाहर की दुनिया से बिल्कुल किनारा कर लिया हो; उस क्षण मेरा 'मैं' भी मुझसे जुदा हो जाता है, नोटबुक के पन्नों मे अपने को छिपा लेता है। देहरी पर खड़ा हुआ मैं भविष्य से लौट आता हूँ, पुनर्जीवित हो जाता हूँ, अब मैं 'वह' हूँ, जो मुन्नू है, बिट्टी का कजिन और वह उसकी आहट सुनकर चौंक जाती है, उसकी तरफ देखकर मुस्कराने लगती है।

"तुम्हारे कमरे में अँधेरा था। मैंने सोचा तुम सो गये हो।" उसने कहा।

वह मुस्करा रही थी। उसकी आँखों में अजीब-सी चमक थी, जो पीने के बाद हमेशा उसके चेहरे पर सुलगने लगती थी।

मन में आया, उससे कहे, पीछे बाबू खड़े हैं। उसे देख रहे हैं। लेकिन फिर याद आया, वह उसकी डायरी में हैं, उसके बाहर उन्हें कोई नहीं देख सकता।

"पास आओ! इतनी दूर क्यों खड़े हो?"

वह एक क्षण दुविधा में खड़ा रहा। फिर वह मेज के पास आया। बीमारी के बाद यह पहला मौका था, जब वे दोनों किचन में बैठे थे। बाहर सन्नाटा था, सिर्फ बारिश की टपटपाहट छत पर गूँज रही थी।

"क्या करते रहे दिन-भर?" बिट्टी ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रख दिया।

"मैं कमरे में ही था।" उसने कहा, "तुम बहुत देर से आयीं?"

"आज हमारा आखिरी रिहर्सल था," वह वैसे ही मुस्करा रही थी, ब्राण्डी का एक घूँट लिया, फिर हँसने लगी, "मैं उसी की खुशी मना रही हूँ।"

"अब कोई रिहर्सल नहीं होगा?"

"होगा, प्रीमियर के एक दिन पहले।" वह एक क्षण रुकी, फिर उसकी ओर देखा, "मेरा कोई फोन तो नहीं आया?"

उसने आँखें ऊपर उठायीं, नहीं, वह कुछ भी नहीं जानती। उसके चेहरे पर अब भी बारिश के निशान थे. भीगे बाल, ढीला जूड़ा, पीली चमक में धुली-धुली-सी आँखें, वह खिड़की के बाहर देख रही थी, जहाँ अँधेरे में अप्रैल का आकाश एक टूटी सलेट-सा लटका था।

"तुम बहुत भीग गयी थीं?"

"हाँ··· इसीलिए यह पी रही हूँ। तुम थोड़ी-सी लोगे?"

"डैरी के साथ आयी हो?" उसने हिम्मत बटोरकर कहा।

"नहीं।" वह बाहर अँधेरे में देखती रही।

"जब तुम भीतर आयीं, मैं सो नहीं रहा था।" उसने कहा।

उसने सिर मोड़कर उसकी ओर देखा।

"क्या कर रहे थे?"

"बहुत पहले," उसने कहा, "बहुत पहले मैं नेकीराम के साथ क्यूबिकल में बैठा था। याद है, तुम बारिश में भीगती हुई आयी थीं। इरा सिगरेट पी रही थी।"

वह हँसने लगी। "वह एक सीन था," उसने कहा।

"नित्ती भाई हाल में बैठे थे।" उसने कहा।

"नित्ती भाई ?" बिट्टी ने उसे देखा।

"हाँ, वह सबसे पिछली सीट पर बैठे थे।"

वह कहना चाहता था, उनकी दाढ़ी बढ़ी थी, जैसे वह कई रातो से नहीं सोये···वह बोतल से ह्विस्की पी रहे थे। किन्तु वह बीच मे ही रुक गया।

बिट्टी का चेहरा बिल्कुल सफेद हो गया था।

"तुमने इरा को बताया था ?"

"नहीं, क्यों ?"

कुछ देर तक वह हकबकी आंखों से उसे देखती रही।

"ऐसे ही···कोई फायदा नही।"

वह फिर अपने में लौट आयी थी, ब्राण्डी के धुंधलके में, लेकिन इस बार उसके भीतर कुछ उबलने लगा। गुस्से की एक लहर उसकी आत्मा मे घुसने लगी।

"बिट्टी," उसने अपने को सँभालते हुए कहा, "तुम मुझे नही बताना चाहती हो, तो ठीक है, मत बताओ। लेकिन तुम झूठ बोलती हो।"

"झूठ ?" वह हँसने लगी, "कैसा झूठ ?"

"सबके बारे मे।"

"और तुम्हे सच मालूम है ?" उसने कहा।

वह चुप उसे देखता रहा। उसे नही मालूम वह क्या है, लेकिन सच है कहीं जरूर, जिसे वे उससे छिपाते रहे हैं। तीन महीनो में पहली बार उसके भीतर बरसों का दबा गुस्सा, अकेलापन, अज्ञान, धोखा, लबलबाने लगे, फिर अचानक ध्यान आया, कुछ दिनो बाद वह यहाँ नही होगा, कुछ नही देखेगा और यह खयाल आते ही सबकुछ बह गया, वह खाली हो गया। आंखो में उमड़ते आँसू बीच रास्ते में वापिस लौट गये।

"क्या बात है मुन्नू ?" बिट्टी ने विस्मय से उसे देखा।

"कुछ नहीं, मैं सोने जा रहा हूँ।" वह कुर्सी से उठ खडा हुआ और अपने अँधेरे कमरे में आ गया। बिस्तर पर लेट गया। मेरा भी एक भेद है, बिट्टी, जो तुम नही जानती। जब तुम जानोगी, तो बहुत देर हो चुकी होगी।

तुम नही जानती, मैं इस घड़ी लायब्रेरी मे बैठा हूँ। मैं अच्छा लडका हूँ। अच्छा

ने के लिए सच का जानना जरूरी नहीं है। सच पूछो, तो मुझे सच जानने
कोई चिन्ता नहीं है। मैं वही करता हूँ, जो मुझसे कहा जाता है। मैं
टी उम्र का दलाल हूँ, दो झूठों के बीच एक सच, जिसे अंग्रेजी में पिम्प
हा जाता है। एक ऐसा लड़का, जिसे किसी भी समय फोन करके बुलाया जा
कता है।

तुम इस दुपहर के बारे में कभी नहीं जानोगी। यह घड़ी एक भेद है। मेरे
और भेदों में से एक, जिन्हें पोटली में बाँधकर मैं इलाहाबाद ले जाऊँगा। बरसों
बाद खोलूँगा, तो पीपल का बूढ़ा पेड़ दिखायी देगा, नंगा बीहड़, लायब्रेरी की
खिड़की पर अपनी छाँह किताब पर फेंकता हुआ; यह तस्वीरों की किताब है,
जिसमें अरीजोना के रेगिस्तान हैं, कैलीफोर्निया का समुद्र, ग्रेंड कैन्यान और
लोहे के लम्बे पुल···मैं इस पुल पर चल रहा था, जब किसी हाथ ने मुझे रोक
लिया। मैं मुड़ा तो वह सामने खड़ी थी।

उसके बाल खुले थे। होंठों पर हल्की-सी लिपस्टिक थी। माथा खाली
था। उसने सिर झुकाकर उस किताब को देखा, जहाँ मेक्सिको के जंगल थे और
तब उसे भ्रम हुआ, वह कहीं बाहर से नहीं, जंगल से निकलकर बाहर
आयी है। उसके सामने खड़ी है। उसे देखकर हमेशा उसकी आँखें धुँधिया जाती
थीं।

वह उठ खड़ा हुआ, लेकिन वह खड़ी रही। वह बड़े ध्यान से खुली तस्वीर
को देख रही थी। होंठ खुल गये थे। वह उसे हमेशा जीन्स में देखता आया था,
किन्तु अब वह साड़ी पहने थी। कन्धे पर काली शाल थी, हालांकि वे अप्रैल के
दिन थे और ठण्ड सिर्फ एक याद की तरह हवा में रहती थी।

"क्या बहुत देर से बैठे हो ?"

वह उसकी ओर मुड़ी। पहली बार उसे सिर से पाँव तक देखा।

"मैं जल्दी आ गया था।" उसने कहा।

वह थोड़ा-सा हिचकी, "घर में तो किसी से नहीं कहा ?"

"किसके बारे में ?" उसने पूछा।

"यहाँ आने के···" वह एक क्षण रुकी, फिर धीरे से कहा, "चिट्ठी से
कहा था ?"

"नहीं", उसने सिर हिलाया। "वह सुबह ही चली गयी थी।"

"मुझे मालूम है।" उसने कहा। उसने कुर्सी को पकड़ रखा था।
सफेद हाथ थे। उसका चेहरा ध्यान में डूबा था।

वह खुली किताब पर मेक्सिको के जंगल देख रही थी।

"क्या मैं तुम पर विश्वास कर सकती हूँ ?" उसने कहा।

वह किसी अज्ञात विपत्ति के कोने से उसे निहार रही थी, और तब उसे खयाल आया, दूसरे का संकट भीतर कुछ भी नहीं जगाता, न दया, न हमदर्दी; सिर्फ एक भूरी, गर्म, तपती रेत सामने से आती है और हम मुँह मोड़ लेते हैं।

"कैसा विश्वास ?" उसने पूछा।

"मैंने तुमसे कुछ कहना है।"

लायब्रेरी में बैठे लोग बार-बार उन्हें देख लेते थे।

"मेरे साथ बाहर आओगे ?" उसने कहा।

वह एक साफ दुपहर थी। इन दिनों दिल्ली का आकाश सर्दी की धुन्ध से निकलकर नीले काँच-सा चमकता था। पेड़ों पर पत्ते लाल हो जाते थे, जितने ऊपर दिखायी देते, उतने ही सड़कों पर; एक जादू-सा झरता था। पतझर नीचे दिखायी देता, जबकि शहर पर वसन्त की हवा चलती रहती। सिर्फ धूप से पता चल जाता, कि गर्मियाँ आ रही हैं।

वे पेड़ों के नीचे चल रहे थे।

वह कुछ आगे थी, सिर्फ इतनी आगे, कि वह बिना मुड़े उसे देख सकता था। हवा से बचने के लिए उसने साड़ी का पल्लू कसकर कमर में खोंस लिया था। शाल को अपने थैले में भर लिया था, जिसका ऊपरी सिरा बार-बार फड़फड़ाने लगता था। चेहरे पर न कोई हड़बड़ी थी, न बेचैनी—सिर्फ एक रूखी वीरानी थी, जैसे पिछली रात उसने कुछ सोचा हो और अब चलते हुए वह 'सोच' ही उसकी आँखें बन गया था, जिसमें वह दुनिया को देख रही थी और वह देखना नहीं था, क्योंकि वह दुनिया नहीं थी, जिसमें वह चल रही थी।

सिन्धिया हाउस के सामने आकर वह रुक गयी। दो खड़ी हुई टैक्सियों के बीच एक सिख ड्राइवर अपनी पगड़ी मुँह पर रखे सो रहा था।

"खाली है ?" उसने पूछा।

"कहाँ जाना है ?"

"माल रोड।" उसने कहा।

ड्राइवर ने पगड़ी हटाकर उन दोनों को देखा—जैसे शहर के बीचोंबीच कोई सपना देख रहा हो।

वह एक सपना ही था—टैक्सी में बैठना, मिण्टो रोड का पुल, धूप में चमकती रेल की पटरियाँ। उस दुपहर में कुछ ऐसा था, कि सबकुछ अनिवार्य जान

पड़ता था : संकल्प और सान्त्वना से परे मानो वे किसी पार्ट को दुहरा रहे थे।

"क्या आप रेडियो थोड़ा कम कर देंगे ?" इरा ने आगे झुककर कहा।

ड्राइवर ने एक क्षण पीछे देखा, फिर कन्धे उचकाकर रेडियो खट-से बन्द कर दिया।

"मैंने बन्द करने के लिए नहीं कहा था।" उसने कहा, किन्तु उसकी आवाज़ इतनी धीमी थी या ड्राइवर का गुस्सा इतना ज्यादा था, कि रेडियो चुप पड़ा रहा।

अब कोई आवाज़ नहीं थी। टैक्सी की चुप्पी कितनी अलग थी, और चुप्पियों से बिल्कुल अलग; वह चलती हुई चुप्पी थी, ठहरकर भी ठहरी नहीं थी, जैसे वे बैठकर भी बैठे नहीं थे, कहीं जा रहे थे; इंजन की गड़गड़ाहट, भागते हुए पेड़, कटता हुआ रास्ता। समय अब भी बीत रहा था, लेकिन उलटी तरफ से। वह उलटी तरफ से उनकी ओर आ रहा था, जैसे वे भविष्य में नहीं, कहीं पिछले समय में जा रहे हों, जहाँ सबकुछ पहले से ही घट चुका था, हो चुका था और तब एक अजीब-से आतंक ने उसे पकड़ लिया। उसने मुँह मोड़कर उसे देखा। वह उसे निहार रही थी।

"तुमने पूछा नहीं, मैं तुम्हें कहाँ ले जा रही हूँ ?"

वह उसे देखता रहा।

"डरो नहीं," उसने कहा, "तुम सब जान लोगे।"

उसके चेहरे पर वही गमगीन सोचा था, जो उसने लायब्रेरी में देखा था। एक असीम ठहराव, जो किसी घातक फैसले को छूकर अचानक थिर हो जाता है, न हिलता है, न डुलता है, लेकिन फिर भी साबुत और सम्पूर्ण दिखायी देता है, उस छिपकली की तरह जो बिजली के नंगे करेंट को छूकर भी कुछ देर तक दीवार से चिपकी रहती है, मरकर भी जीवित-सी दिखायी देती है।

"इरा," उसने धीरे से कहा, "क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ कर सकता हूँ ?"

वह मुसकरायी, अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया, "तुम कर रहे हो," उसने कहा, "तुम मेरे साथ बैठे हो।"

हाथ पर रखी उसकी अँगुलियाँ धीरे-धीरे काँप रही थीं, समूचे ठहराव के बावजूद जैसे देह अपना बदला अँगुलियों से निकाल रही थी।

रोशनी मन्द हो गयी। कोई बादल सूरज पर जा अटका था, और पेड़ काले पड़ गये थे। वे दरियागंज को पार करके चौड़ी सड़क पर आ गये और फिर

सूरज निकल आया, अपनी पीली रोशनी से जामा मस्जिद की मीनारों को धोता हुआ···और तब उसे सहसा वे दिन याद हो आये, जब वह दिल्ली आया था, बिट्टी के साथ पहली बार लाल किला और जामा मस्जिद देखने गया था, कितना भोला था वह और कितना बेवकूफ जिसने सिर्फ माँ का मरना और बिट्टी का जाना देखा था और वह सोचता था कि सारी दुनिया इन दो घटनाओं में समा सकती है···क्या वह किसी ज्ञान की शुरुआत थी ? ज्ञान, जिसका मतलब है जानना, लेकिन दूसरा मतलब है, जो जाना है, उसे छोड़ देना, और छोड़ देने में दिल्ली के वे सारे दिन शामिल हैं, जो उस सुबह से शुरू हुए थे, जब वह प्लेटफार्म पर खड़ा था; और एक अजनबी लड़की ने उसका कन्धा पकड़कर कहा था, "तुम···तुम बिट्टी के कजिन हो ?"

वह तब हँस रही थी।

अब वह खिड़की से बाहर देख रही थी।

टैक्सी कश्मीरी गेट के भीतर से बाहर निकल रही थी। दुपहर की अवसन्न धूप में कुदसिया गार्डन लेटा था, धूल में सने ताड़ के पेड़ खड़े थे, पता नहीं क्यों, दिल्ली के इस हिस्से में आते ही उसे गदर की कहानियाँ याद आने लगती थीं, जैसे मरे हुए सिपाहियों की प्रेतात्माएँ अब भी सूखे ताड़ों से चिपकी खड़ी हैं। तब सहसा झटका-सा लगा। टैक्सी ट्रैफिक-लाइट्स के आगे खड़ी हो गयी। ड्राइवर ने पीछे मुड़कर देखा—

"माल रोड में किधर जाना है ?"

"आप चलिए, मैं बता दूँगी।"

वह अपना हैंड बैग खोल रही थी। एक कागज बाहर निकाला, उसे पढ़ा, फिर लपेट दिया, इतना छोटा, जैसे वह कोई पुड़िया हो, फिर कुछ याद आया और वह उसे दुबारा खोलने लगी; लेकिन इस बार पढ़ने के बजाय उसने उसे बैग पर ही पड़े रहने दिया।

"मुन्नू," उसने कहा। "तुम इसे उन्हें दे देना—सिर्फ देना होगा, और कुछ नहीं।"

उसने कागज को लपेटकर उसके हाथ में रख दिया—उसकी गीली हथेलियों के बीच, और वह उसे पकड़े रहा। उसने पूछा नहीं, कौन, किसे देना होगा ?

"तुम मेरे साथ नहीं आओगी ?"

"तुम्हें यूनिवर्सिटी का कॉफी हाउस मालूम है ?" उसने खिड़की से बाहर

देखा, "मैं वहीं रहूँगी।"

पागल-सा खयाल आया, वह कागज़ को फाड़ दे, उसकी चिन्दियाँ बनाकर टैक्सी की खिड़की से बाहर फेंक दे, किन्तु वह बैठा रहा। वह अगर यहाँ तक आ गया है, तो आखिर तक जा सकता है। पहले शायद वह डर जाता, बीच में मुड़ जाता। पर बीमारी के लम्बे, अकेले दिनों में वह डर को भूल गया था। वह सिर्फ आतंक के अन्तहीन खुलेपन में आ गया था, जहाँ कोई ऐसा चोर-दरवाजा नहीं था, जिसे खोलकर कोई पुराना डर भीतर आ सके। वह तैयार होकर आया था।

अचानक उसे अपने हाथ पर उसका स्पर्श महसूस हुआ, उसने सिर उठाया, तो उसकी आँखें दिखायी दीं।

"क्या सोच रहे हो ?" उसने कहा।

"कुछ नहीं।" उसने आँखें मोड़ लीं।

"कुछ भी नहीं होगा, मुन्नू," उसने उसका हाथ मसलते हुए कहा। "तुम सिर्फ यह चिट्ठी देकर आ जाना, बस।"

"तुम मेरे साथ नहीं आ सकतीं ?" उसने कहा।

एक क्षण सन्नाटा रहा। सिर्फ टैक्सी की धड़कन सुनायी देती रही।

"मैं नहीं आ सकती।" उसके स्वर में कुछ ऐसी भीगी-सी याचना थी, जो उसने पहले कभी नहीं सुनी थी·· अस्पताल की दुपहरों में भी नहीं···यह भी एक दुपहर है, जिसके बीच कुछ सुलझ रहा है, स्टूडियो और बरसाती के बाहर—दिल्ली की खुली रोशनी में। वह चिट्ठी हाथ में पकड़े बैठा रहा। बहुत पहले की रात याद आने लगी—रात, डैरी का बँगला, पेड़ों के नीचे चलती हुई इरा, अपने से भीख माँगती हुई, प्रार्थना करती हुई और तब सहसा उसे लगा, छोड़ना आसान नहीं होता, न अपना घर, न दूसरे की चाहना···उसने आँखें मूँद लीं। वह सीट का सिरहाना लेकर बैठ गया।

"दायीं तरफ मोड़ लीजिए," इरा ने कहा।

ड्राइवर ने ब्रेक लगायी और वह झटके से उठ बैठा।

वे एक चौराहे पर आकर रुक गये थे। टैक्सी एक सँकरी गली में मुड़ रही थी। जल्दी में वह रोड-साइन भी नहीं देख पाया। चारों तरफ ऊसर-मैदान फैला था, भूरी झाड़ियाँ, उड़ती हुई धूल, धूप में चमकते हुए मकान। बीच-बीच में कोई बँगला दिखायी दे जाता, अंग्रेजों के जमाने का, पीले पलस्तर में लिपटा हुआ; कुछ दूर जाने पर कोठियों की कतार शुरू हो गयी, दोमंजिला फ्लैट,

जिनकी घुमावदार सीढ़ियाँ ऊपर जाकर जालीदार झरोखों में गायब हो जाती थीं। सड़क के अन्तिम मोड पर इरा ने ड्राइवर से रोकने के लिए कहा और टैक्सी धीरे-धीरे सरकते हुए फुटपाथ से सटकर खड़ी हो गयी।

एक दुमंजिला सफेद इमारत सामने खड़ी थी। फाटक खुला था। बीच दालान में तीन पहियों की एक साइकिल अपनी पीठ पर लुढ़क गयी थी, आगे का पहिया हवा में घूम रहा था।

"यह घर है।" उसने सोचा, इरा को देखा। वह एकटक साइकिल को देख रही थी।

वह उतरने लगा। दरवाजे के हैंडिल पर हाथ रखा, तो सहसा इरा ने उसका हाथ पकड लिया।

आज बरसों बाद भी वे दो आँखें दिखायी देती हैं—दो ठहरी हुई बूंदकियाँ, राख में चमकती हुई।

"कुछ कहना है ?"

उसने सिर हिलाया। धीरे से अपना हाथ उसके हाथ से हटा लिया, "वह दूसरी मंजिल में रहते हैं। कुछ पूछें, तो कहना, तुम अकेले आये हो।"

उसने झटके से मुंह फेर लिया। "यूनिवर्सिटी।" उसने ड्राइवर से कहा और वह टैक्सी से बाहर निकलकर फुटपाथ पर खडा हो गया। किन्तु टैक्सी कुछ दूर जाकर ठहर गयी। वह खिडकी में सिर बाहर निकालकर उसे बुला रही थी। वह भागता हुआ उसके पास चला आया। उसने खिडकी से हाथ बाहर निकाला और जल्दी से उसके हाथ में कुछ ठूँस दिया।

"स्कूटर ले लेना और देखो ··" वह एक क्षण रुकी, "सिर्फ चिट्ठी दे देना, कुछ कहना नहीं।"

टैक्सी के जाने के बाद वह उडती धूल के बीच खडा रहा। उसने मुट्ठी खोली, उसमें मुसा हुआ एक दस का नोट था, जिसमें अब भी उसके पसीने की गरमायी चिपकी थी।

फाटक आधा खुला था। भीतर एक चौड़ा आँगन था, जिसके कोनों में धूल, कबाड़ और पत्ते जमा हो गये थे। पत्तों को देखकर उसे हैरानी हुई, आस-पास कोई पेड़ नजर नहीं आता था।

सिर्फ दुपहर की ढलती धूप थी, और बीच आँगन में तीन पहियों की

साइकिल उलटी पड़ी थी। कहीं बहुत दूर कोई कुत्ता भौंक रहा था।

वह चलता गया और किसी ने उसे नहीं रोका। नीचे की मंजिल सूनी पड़ी थी। बरामदे पर चिकें झूल रही थीं। वह कुछ आगे जाकर घर के पिछवाड़े चला आया। बायीं तरफ एक ज़ीना दिखायी दिया। न कोई नम्बर, न कोई नेमप्लेट। सिर्फ सीढ़ियाँ अँधेरे में ऊपर जा रही थीं।

वह मुड़ जाना चाहता था। वह डरा से नहीं डरा था। टैक्सी में उसके हाथ से चिट्ठी लेते हुए भी उसने अपने को सँभाल लिया था। लेकिन अब इस खाली ज़ीने के आगे सहसा उसकी हिम्मत छूट गयी थी। दिल्ली में यह पहला मौका था, जब वह अकेला, बिना बिट्टी के साथ कहीं गया था, वह भी अपने घर से इतना दूर; मैं यहाँ क्या कर रहा हूँ ? पराये घर के आगे, दुपहर की तितीरी धूप में पागलों की तरह चक्कर काट रहा हूँ।

पीछे पैरों की आहट हुई; एक बूढ़ा भिश्ती पानी की मशक उठाये ले जा रहा था। उसने अर्से से कोई भिश्ती नहीं देखा था, और वह भी इतना जर्जरित; मशक के लटके मुँह से बूंद-बूंद पानी नीचे टपक रहा था।

और तब न जाने क्यों—भिश्ती के धैर्यशील चेहरे या नीचे टपकती पानी की बूंदों को देखकर सहसा उसके भीतर सब शान्त हो गया। उसे लगा, इसमें डर का कोई कारण नहीं है। इसमें दयनीय कुछ भी नहीं है कि वह एक पराये घर के आगे खड़ा है। यह बहुत आसान है। वह चिट्ठी देगा और वापिस लौट जायेगा।

"किसे ढूंढ़ रहे हो ?" भिश्ती ने कन्धा सीधा करके उसकी ओर देखा।

उसने नाम बताया, तो उसकी गहरी, धँसी आँखें ऊपर उठ गयीं, "ऊपर रहते हैं। ज़ीने से चढ़ जाओ।"

दो बूढ़ी, भीगी आँखों ने उसे निहारा था। उनमें अजीब-सी हमदर्दी थी। मैं शायद खुद बहुत अजीब दिखायी दे रहा हूँ; उसने सोचा, किन्तु इस बार वह नहीं रुका और ज़ीने का बैनिस्टर पकड़कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। वह एक साँस में सारी सीढ़ियाँ पार कर गया।

ऊपर धूप का एक टुकड़ा दिखायी दिया। दो दरवाज़ों के बीच एक नन्हा रोशनी का तालाब ! वह साँस लेने को रुक गया। आँखें चुंधिया-सी गयीं। वह डर नीचे छोड़ आया था लेकिन दिल की धड़कन एक खराब पंखे-सी उसके भीतर घुर्र-घुर्र करते हुए घूम रही थी।

समझ में नहीं आया, कौन-सा दरवाज़ा खटखटाये; दोनों एक से ही दिखायी

देते थे। न कोई घण्टी, न नाम की तख्ती, न कोई भीतर से आती आवाज़। सिर्फ खाली ज़ीने की सांय-सांय...और तब उसकी आंखें रोशनदान पर पड़ीं, एक काली बिल्ली वहां बैठी हुई उसे घूर रही थी। क्या यह कोई अपशगुन है? अपशगुन कैसा, दिल्ली के खाली ज़ीनों में न जाने कितनी बिल्लियां अकेली बैठी रहती हैं। वह उसे देख रहा था, कि अचानक उसे लगा, बिल्ली थोड़ा-सा अपने भीतर सिकुड़ गयी, जैसे उसने कुछ भांपा हो और तब उसे अपने कन्धे पर एक बोझ-सा महसूस हुआ।

"मैंने तुम्हें खिड़की से देख लिया था।"

नित्ती भाई अपनी आंखों से उसे टोह रहे थे। वह देहरी पर खड़े थे। उनका हाथ अब भी उसके कन्धे पर था लेकिन बिल्ली बहुत पहले जा चुकी थी।

वह देहरी से हटकर दरवाज़े की ओट में खड़े हो गये। धूप अब उनके चेहरे पर गिर रही थी। वह काले रंग का कुर्ता पहने थे। दाढ़ी काट डाली थी... जिसके साथ उम्र भी झर गयी थी। वह साफ और हल्के से दिखायी दे रहे थे—लेकिन कमज़ोर—बिना दाढ़ी के उनका चेहरा अजीब-सा नगा और नास्तिक दिखायी दे रहा था।

"क्या अकेले आये हो?"

"हां!" उसने कहा। वह प्रार्थना करने लगा, वह आगे कुछ न पूछें। आगे इतनी सँकरी जगह थी, कि वहां से न सच गुज़र सकता था, न झूठ।

सिर्फ कमरे से गुज़रा जा सकता था। जल्दी में वह ठीक से देख भी नहीं पाया, वहां क्या है? सिर्फ एक लम्बा-सा काउच दिखायी दिया था, दीवार से टिके हुए तीन कुशन। शीशे की आलमारी—ऊपर एक लम्बी पेन्टिंग का पैनल। वह एक नज़र में सबको देख गया, किन्तु कमरे में धुंधलका था, परदे गिरे थे, इसलिए दर्ज कुछ भी नहीं किया था, सिर्फ आंखें फेरी थीं, किन्तु इस एक धुंधले क्षण में भी कमरे की चीज़ें एक सुख-आराम का आभास देती थीं। वह पहली बार दिल्ली में भरा-पुरा ड्राइंग रूम देख रहा था। अब तक वह सिर्फ बरसाती, स्टूडियो या होस्टल के कमरों को देखता आया था, जहां चीज़ें सिर्फ अपनी जगह टटोलती जान पड़ती थीं। यहां वे रहती थीं। वह घर था। नित्ती भाई घर में रहते थे।

वह बीच में ठिठक गया। दूसरे कमरे का परदा हिला था। एक महिला बाहर आयी, वह भी उसे देखकर ठिठक गयीं।

उसने सोचा, वह कुछ पूछेंगी। लेकिन वह खड़ी रहीं। एक छोटी-सी हँ

जो घरेलू उतनी नहीं, सिर्फ घरवाली जान पड़ती थीं। शायद सोते हुए उन्होंने खटका सुना था। सांवला गोल चेहरा, माथे पर चौड़ी बिन्दी, बड़ी-बड़ी आँखें... जिनमें एक अजीब-सा कौतूहल बाहर झाँक रहा था।

"भीतर चले आओ।" उन्होंने कहा। वह उनके साथ-साथ दूसरे कमरे के सामने चला आया। घर के अन्दरूनी हिस्से में, जहाँ एक छोटा-सा बरामदा था। वहाँ आकर वह रुक गयीं। बरामदे की दायीं तरफ़ एक दूसरा कमरा था और उसके दरवाज़े खुले थे।

एक छोटी-सी मुस्कराहट उनके चेहरे पर आयी।

'भीतर नहीं जाओगे?"

और तब उसे ध्यान आया, नित्ती भाई अपने कमरे में हैं; किन्तु जब तक वह सामने खड़ी थीं, उसे भीतर जाना असम्भव जान पड़ा, और वह शायद यह भाँप गयीं, मुड़ गयीं, और वह अकेला देहरी के बाहर खड़ा रहा।

भीतर चुप्पी थी। सारा घर एक घनी चुप्पी में डूबा था, लेकिन वह खाली नहीं थी। घर के सन्नाटे में हमेशा कुछ भरा रहता है—एक पुराने ऐटिक की तरह--पुरानी गन्ध, टूटी आवाज़ों के चीथड़े, बन्द घड़ियाँ! वे सब दरवाज़ों के पीछे थे, कोनों में दुबके हुए, चुप्पी के कोनों को कुतरते हुए।

वह उन अदृश्य आवाज़ों को सुनता रहा। फिर दरवाज़ा खटखटाया। वह देहरी के पास ही खड़े थे, जैसे उसकी प्रतीक्षा कर रहे हों।

"बैठोगे?" उन्होंने अनिश्चित निगाहों से उसे देखा।

दीवार से सटा एक पलंग था, जिस पर लाल खादी की चादर बिछी थी, सामने एक कुर्सी, मेज़ के सामने रखी हुई। खिड़की के नीचे एक स्टूल। वह कहीं भी बैठ सकता था, किन्तु पहले क्षण वह सिर्फ खड़े रहने का ही निश्चय कर सका।

वह खुद बैठ गये। उसे देखते रहे।

"कब तक खड़े रहोगे?"

"मुझे जाना है।" उसने कहा।

"जब तक नहीं जाते, तब तक बैठो।"

वह पलंग के छोर पर बैठ गया। वह उठे और धीरे से दरवाज़ा उढ़का दिया।

पहली बार वह नित्ती भाई के साथ अकेले में बैठा था। उनके बीच बहुत-सी चीज़ें थीं, लेकिन वे अलग थीं और एक-दूसरे को छूती नहीं थीं। उनकी उम्र

भी बहुत दूर-दूर थी—निली भाई चालीस पार कर रहे थे और वह चौदह-पन्द्रह के बीच लटक रहा था। उम्र का सन्नाटा सबसे दूभर होता है। सिर्फ एक सहारा था—दूसरे लोग। वे दोनों उन्हें लेकर बातें कर सकते थे।

"तुम बहुत बीमार रहे ?" उन्होंने उसकी ओर देखा।

"हाँ, लेकिन अब मैं ठीक हूँ।" उसने कहा।

"क्या बात थी ?"

"कुछ नहीं—बुखार आता था।"

"कैसा बुखार ?"

"मालूम नहीं। रात को चढ़ता था। दिन के समय उतर जाता था।"

वह चुपचाप उसकी ओर देखते रहे। फिर उन्हें कुछ याद आया, वह धीरे से मुस्कराये, "मुझे भी यही होता था। मैं तुमसे छोटा था। मुश्किल से दस बरस का रहा हूँगा, उतना ही जितना टुन्नू है।"

"टुन्नू कौन ?"

"वह स्कूल गया है। अभी आता होगा।"

वह चुप हो गये। वह भूल गये कि वह कुछ कह रहे थे। वह नहीं चाहता था कि वे चुप बैठे रहें। वह जिस काम से आया था, उसे अन्तिम क्षण तक टाल देना चाहता था।

"आप कुछ कह रहे थे।" उसने कहा।

उन्हें ध्यान आया। चौंक-से गये।

"कुछ नहीं," उन्होंने चेहरे पर हाथ फेरा, एक थकी-सी मुस्कान चली आयी, "मेरी एक मौसी थी। जब रात को मुझे बुखार आता, वह मेरे सिरहाने आकर बैठ जाती थी। पता नहीं, बुखार में तुम्हें क्या होता है ? मुझे बड़ी बेचैनी होती थी। सिर फटने लगता था। वह मेरे पास आकर बैठ जाती थी, मेरे सिर को सहलाते हुए कहती थी, 'अब तुम ठीक हो। अब तुम्हें कोई तक-लीफ नहीं।' वह इस बात को उस समय तक दुहराती रहती, जब तक मुझे नींद नहीं आ जाती थी।"

बोलते हुए उनका कृशकाय चेहरा बहुत उजला-सा हो आया था। पीछे खिड़की थी; अप्रैल की साफ, धुली हुई रोशनी उनके बालों पर गिर रही थी।

और तब उन्हें देखते हुए अचानक उसे खयाल आया था कि कोई भी लड़की उन्हें चाह सकती है। सिर्फ एक क्षण के लिए यह विचार आया था, लेकिन

इतना छोटा था कि उसे चाहने की भूल-भूलैया नहीं मालूम थी, लेकिन उसका चमकीला और भेदभरा निशान उनके चेहरे पर था, जिसे देखकर वह हमेशा चकित हो जाता था।

"तुम घर से आ रहे हो ?" उन्होंने पूछा।

"हाँ," उसने कहा।

"यह जगह काफी दूर है···तुम्हें मकान खोजने में तो मुश्किल नहीं पड़ी ?"

"नहीं···मैं सीधा आ गया था।"

उन्होंने आँखें ऊपर उठायीं—

"किसने पता दिया था ?"

"इरा ने," इस बार वह झूठ नहीं बोल सका।

"वह ठीक है ?"

"जी," उसने कहा। उसका हाथ जेब में गया; दस रुपये का नोट, कुछ रेज़गारी, बरसाती की डुप्लीकेट चाभी, सबके बीच टटोलते हुए उसकी अँगुलियाँ कागज़ पर थिर हो गयीं। वह रुका रहा। कोई चीज़ उसे रोके रही।

वे दोनों एक दूसरे को देख रहे थे।

"बिट्टी कैसी है ?" उन्होंने पूछा।

"ठीक है," उसने कहा, फिर कुछ याद आया, "आप बहुत दिनों से स्टूडियो में नहीं आये ?"

"किसलिए ?"

"आप पहले आते थे।" उसने कहा।

"बहुत दिन पहले !" उन्होंने कहा। एक रूखी-सी मुस्कराहट होंठों पर चली आयी, "तुमने एक बार मुझसे स्ट्रिनबर्ग के बारे में पूछा था—याद है ?"

उसने सिर हिलाया। उसे खुशी हुई कि उन्हें अभी तक वह बात याद है।

"मैं उस दिन आपके घर गया था···" वह कुछ झिझका।

वह भी मुस्कराने लगे। वे अचानक उस शाम के पास आ गये थे। वह उन दोनों के बीच सुरक्षित थी।—वे मार्च के दिन थे और वह बिट्टी और डैरी के साथ उनके घर गया था। बाथरूम की खिड़की से बारहखम्बा की रोशनियाँ देखी थीं—वहीं पर इरा के कपड़े भी देखे थे। टब के ऊपर हैंगर पर लटके हुए; कुछ चीजें हमेशा के लिए जीवित रह जाती हैं। समय उन्हें

ही सोचता—वे खुद समय को सोखती रहती हैं।

"आप अब उस घर में नहीं जाते ?"

नित्ती भाई कुछ सोच रहे थे, सहसा चौंक-से गये।

"बहुत कम," उन्होंने कहा। फिर धीरे से हँस पड़े, "जब नींद नहीं आती, तो वहाँ सोने चला जाता हूँ।"

"सिर्फ सोने के लिए ?" उसने नित्ती भाई को देखा। वह निश्चल थे—आँखें मेज पर रखे कागजों पर झुकी थीं। वह हँसते भी थे, तो भी समूचा चेहरा एक गहरी, ठण्डी सतह पर जमा रहता था। चिट्ठी के दोस्तों में सिर्फ वही एक थे, जिन्हें देखकर न दुख समझ में आता था, न सुख। उन्हें देखकर यह नहीं लगता था, कि वे कुछ ढूंढ रहे हैं, उलटे लगता था, उन्हें कोई ढूंढ रहा है—और वह अभी तक बचे हैं। कुछ लोगों को अकेले ही छोड़ देना चाहिए। अगर वे उन्हें पूरी तरह अकेला छोड़ दें, तो वे आखिर तक बचे रहते हैं। पहली बार इच्छा हुई, नित्ती भाई से कुछ पूछे। कोई सवाल। कोई ऐसा सवाल, जिसका उत्तर वह अपनी डायरी में लिखकर इलाहाबाद ले जा सके···

"नित्ती भाई !" उसने कहा।

"क्या ?" वह उसे देखने लगे।

अचानक वह शर्म से गड़-सा गया। वह उनके अकेलेपन के लिए प्रार्थना कर रहा था, जबकि उनकी आँखें कुछ खोजने के लिए उसे देख रही थीं, मानो पूछ रही हों, 'क्यों आये हो, तुम्हें किसने यहाँ भेजा है ?' वह उनसे नहीं, नित्ती भाई उससे सवाल पूछ रहे थे और उसके पास देने के लिए एक कागज का टुकड़ा था।···

"क्या बात है मुन्नू ?" नित्ती भाई आगे की ओर झुक आये, उसके माथे पर हाथ रखा, "तुम ठीक तो हो ?"

क्या वह भाग सकता है ? घर नहीं, स्टेशन की तरफ···वहाँ से इलाहाबाद और फिर, उसके बाद ?

वह आगे नहीं सोच सका। जेब में हाथ डालकर चिट्ठी बाहर निकाली। यह समय है, उसने सोचा। अब नहीं दूंगा, तो कभी नहीं दे सकूंगा।

उसने मुड़े हुए कागज को मेज पर रख दिया।

"यह इरा ने आपके लिए दी थी।" उसने कहा।

नित्ती भाई ने उसे देखा, फिर मेज से चिट्ठी को उठा लिया, खोला नहीं, कुछ देर हाथ में लिये बैठे रहे, दुबारा उसकी ओर देखा और फिर पूछा, "क्या

वह तुमसे मिली थी ?"

"जी," उसने कहा।

"कुछ कहा था ?"

"नहीं, कहा कुछ नहीं। सिर्फ यह चिट्ठी दी थी।"

कितना आसान था, उसने सोचा। मैं इतनी देर से यूं ही डर रहा था। डर कुछ भी नहीं है, मेरा वहम, कागज का एक टुकड़ा, दिल्ली की दुपहर; उसके परे मैं खाली हूँ। मैं हल्का हो गया हूँ। मैंने अपनी जिम्मेदारी से हाथ धो लिया है।

वह सचमुच बहुत छोटी चिट्ठी रही होगी। उसे कब पढ़ लिया, कब मेज पर रख दिया, कब वह खिड़की के सामने आ खड़े हुए, उसे कुछ भी पता नहीं चला। जब वह बहुत देर तक कुछ नहीं बोले, तो वह उठ खड़ा हुआ।

"नित्ती भाई ?" उसने कहा, "मैं अब चलता हूँ।"

वह शायद समझे नहीं। उसकी ओर देखा और तब एक अजीब-से विस्मय ने उसे पकड़ लिया। नित्ती भाई की आँखों में कोई पहचान नहीं थी। वह उसे ऐसे देख रहे थे, जैसे वह एक खाली कुर्सी हो, खाली हवा, खाली जगह। लेकिन यह गलत है। यह मेरा भ्रम है। वह जानते हैं, मैं उनके सामने हूँ, लेकिन मैं अब अलग नहीं हूँ, मैं मुन्नू नहीं हूँ। मैं उस चिट्ठी का हिस्सा बन गया हूँ, जो उन्होंने पढ़ी है। मैं चिट्ठी हूँ। मैं वह खबर हूँ, जो कागज की तहों में बन्द थी। अब वह बाहर आ गयी है और वह उसे वैसे ही देख रहे हैं जैसे दुर्घटना के बाद आदमी सुन्न आँखों से आसपास की दुनिया को देखता है, खून में लिथड़ी मिट्टी, मिट्टी में लिसलिसा जख्म, भीड़ के चेहरे, मैं उनसे छिटककर दुनिया का हिस्सा बन गया था···

फिर ध्यान टूटा। वह जैसे होश में आये, जल्दी से उन्होंने चिट्ठी को मेज के कागजों के नीचे दबा दिया। दरवाजे पर हल्की-सी आहट हुई। परदा हिला और कमरे में एक छाँह-सी घिर आयी।

वह दरवाजे पर खड़ी थीं, एक नीरव क्षण तक दोनों को देखती रहीं। "इनसे पूछो, चाय या शर्बत लेंगे ?" उन्होंने नित्ती भाई से पूछा।

"मुझे जाना है।"

वह जल्दी में उठ खड़ा हुआ। किन्तु उनकी आँखों में कोई जल्दी नहीं थी। साड़ी का पल्लू ऊपर खिंच आया था, बाँह पर चूड़ियाँ झूल रही थीं। चेहरे पर एक दबा-सा कौतूहल था। कमरे की दुपहर छः आँखों में सिमट आयी थी, एक दूसरे पर टिकी हुई।

"आप कुछ लेंगे ?" उन्होंने नित्ती भाई से दुबारा पूछा।

"नहीं, अभी कुछ नहीं।" उन्होंने कुछ इतने धीमे से कहा, जैसे कमरे में सिर्फ उनकी पत्नी हों, जिसे सिर्फ वह समझ सकती है। घर की एक आवाज में कितनी तहें जमी होती हैं, जिन्हें बाहर का आदमी सुनकर भी कभी नहीं समझ पाता···बरसों से जमी परतें, जो सिर्फ उनके लिए ही खुलती हैं, जो उनके भीतर जीते हैं।

हाँ, यह उनकी पत्नी थी। वह उसे देख रही थी, और तब उसे लगा, जैसे वह सब जानती थी, वह एक क्षण के लिए मुस्करायी थी, जिसमें वह शामिल था। इरा और बिट्टी से अलग, वह घर की औरत थी, जिन्हें बाहर नहीं आना होता, जो घर की खिड़की से सब ऊँच-नीच देख लेती हैं, और तब न जाने क्यों, उसे वह बिल्ली याद आयी, जिसे जीने के अँधेरे में देखा था···न घरेलू, न बनैली, दोनों के बीच अपनी उत्तप्त और उत्सुक आँखों से घूरती हुई···

वह लौट गयी। लेकिन वह खड़ा रहा। दुबारा बैठने की हिम्मत नहीं हुई। वह घर, वह कमरा, वह दुपहर, मानो सब उस औरत के साथ थे। वह सबको अपने साथ समेटकर चली गयी थी। अब कुछ नहीं था। उसने चिट्ठी दे दी थी अब कुछ भी करने को नहीं बचा था।

"मैं अब जाऊँगा।" उसने कहा।

नित्ती भाई कुर्सी से हिले, "ठहरो, मैं तुम्हारे साथ आता हूँ।"

वह उठ खड़े हुए। अब सबकुछ पहले जैसा हो आया था। उनकी कुर्सी, मेज पर रखे कागज, कागजों के नीचे दबा कागज; वे दुर्घटना की हक्कबक्की दुनिया से निकल आये थे। अप्रैल की एक शान्त दुपहर, सफेद फीकी-सी रोशनी, सूरज पड़ोस की छतों पर झुलक आया था।

वह दरवाजे की तरफ बढ़ा, फिर पाँव रुक गये। एक हल्की धीमी-सी आवाज सुनायी दी। कोई दूसरे कमरे में माउथ-आर्गन बजा रहा था, इतनी मन्द और धीमी ट्यून, जिसे अगर ध्यान से न सुनो, तो लगता था जैसे वह सन्नाटे का ही स्वर है; चुप्पी के हाशिये पर चलता हुआ।

"यह टुन्नू है," नित्ती भाई ने उसकी ओर झेंपती निगाहों से देखा, "हर रोज स्कूल से लौटने के बाद बजाता है।"

उसने नित्ती भाई को देखा; एक क्षण के लिए विश्वास नहीं हो सका, वह बाप हैं। यह उनका घर है। एक सूनी, सुघड़ गृहस्थी, जिसका उस आदमी से कोई रिश्ता नहीं, जो एक दुपहर स्टूडियो के अँधेरे में बैठे थे।

"आप बैठिए, मैं अब चला जाऊँगा।" उसने कहा।

नित्ती भाई उसके पीछे खड़े थे, दरवाजा खुला था, उसके पीछे एक और छाया थी, अपनी मूक आँखों से उसे निहारती हुई।

"ठहरो, मैं बत्ती जला देता हूँ। यहाँ सीढ़ियों पर अँधेरा रहता है।"

नित्ती भाई जीने की सीढ़ियों तक चले आये, बत्ती जलायी, उसने सिर उठाया, वही संन्यासियों-सी उत्तप्त, निश्चल आँखें उस पर टिकी थीं।

"आपको कुछ कहना हो, तो मैं बता दूंगा।" उसने धीमे स्वर में कहा।

उन्होंने उसके कन्धे पर हाथ रखा।

"नहीं, कुछ नहीं।" उन्होंने कहा। फिर एक क्षण ठिठके, "प्रीमियर के दिन तो आओगे?"

"हाँ···और आप?"

"मैं तुम्हारे साथ बैठूंगा···" वह धीमे से हँसे। "हम एक साथ स्ट्रिनबर्ग देखेंगे।"

उनकी हँसी अब भी याद आती है। क्यों कहा था उन्होंने, जब उन्हें नहीं आना था—या शायद उस समय उन्हें कुछ मालूम नहीं था। उस समय उन्होंने कोई फैसला नहीं लिया था।

वह सीढ़ियाँ उतरने लगा, फिर ठहर गया, बीच जीने के सिलाबी उजाले में उसकी आँखें मुड़ गयी, कोई नहीं था, सीढ़ियाँ खाली पड़ी थीं, सिर्फ एक हल्की, धीमी-सी धुन नीचे उतर रही थी, माउथ-आर्गन की आवाज, जीने के अँधेरे कोनों में रिसती, रेंगती हुई एक फिल्मी ट्यून, जो आखिरी सीढ़ी तक उसके साथ चलती रही, जब तक वह बाहर उजाले में नहीं आ गया।

११

बरसों बाद भी जब वह आधी रात के समय फोन की घण्टी सुनता है, तो उचक-कर बैठ जाता है। दिल्ली की गयी-बीती रात लौट आती है। दीवार पर टार्च का एक धब्बा दिखायी देता है, जिसमें मदर टैरेसा की तस्वीर उभर आती है, जिसमें वह दो कोढ़ी, भिखारी लड़कियों के साथ बैठी हैं। लड़कियाँ मुस्करा रही हैं, मदर टैरेसा हवा में दोनों हाथ उठाये ऊपर देख रही हैं। पता नहीं, कहाँ देख रही हैं।

उसे लगता है, वह मिसेज़ पन्त को देख रही है। वह टार्च लेकर छत पर आयी थीं। उनके पीछे पहाड़ी नौकर आया था, नौकर के पीछे कुत्ते; कुत्ते पहली बार छत पर आये थे। वे बहुत खुश और उत्तेजित थे। एक ने टाँग उठा-कर गमले के पौधे को सींचा, दूसरा टैंक के नीचे पड़ी बियर की खाली बोतलों को सूँघ रहा था।

मिसेज़ पन्त के एक हाथ में छड़ी थी, जिसके सहारे वह सीढ़ियाँ चढ़कर आयी थीं। दूसरे हाथ में टार्च, जिसे वह बरसाती के भीतर घुमा रही थी और रोशनी का धब्बा दीवार पर सरकता हुआ अखबार के फोटो पर अटक गया था।

लेकिन वह सो नहीं रहा था। वह सबकुछ देख रहा था। पिछली तीन रातों में एक अद्भुत चीज़ हुई थी, बुखार चला गया था। लेकिन जाते-जाते उसकी नींद को भी ले गया था। वह जागता रहता। आँखें मूँदे लेटा रहता। मूड़ों के पीछे बिट्टी की साँस सुनायी देती। वह थकी-माँदी स्टूडियो से घर लौटती, खाना बनाती और बिस्तर पर पसर जाती। डॅरी अब भी मोटर साइकिल पर उसे छोड़ने आते थे, लेकिन अब वह ऊपर नहीं आते थे। वह अपने कमरे में लेटा रहता और मोटर साइकिल की घुरघुराती आवाज़ धीरे-धीरे अँधेरे में खो जाती।

रातें चमकीली हो रही थीं। चाँदनी में कमरे की चीज़ें साफ-साफ दिखायी देतीं—उसका सूटकेस, होल्डाल, थैला। उसकी नोटबुक। उसके मैले कपड़े

एक तरफ धुले हुए कपड़े दूसरी तरफ। मूढ़े के पीछे बिट्टी की चीजें, किताबें, रिकार्ड प्लेयर। मूढ़ों का पार्टीशन। बाहर सेमल का पेड़ अप्रैल की हवा में फरफराता और जब पत्ते छत पर गिरते तो हल्की-सी आवाज होती; दूसरी आवाज होती; फिर आवाजें चुप हो जातीं और पत्ते हवा को सूंघते हुए बरसाती के पायदान पर चले जाते।

वह आधी नींद के परे रेल की सीटी सुनता। फिर सन्नाटा हो जाता। लेकिन हर रात, आधी रात की घड़ी में, कोई चिमगादड़ मकबरे के गुम्बद से बाहर निकल आता, छत पर शराबी-सा डोलता, चाँदनी के किसी काले स्वप्न-सा मँडराता रहता और फिर किसी दीवार से चिपक जाता। ऐसा हर रात होता था। वह चिमगादड़ों को पहचानने लगा था। वे सब मिशनरी हन्टर की किताब के पन्नों से बाहर आते, चिमगादड़, रेल की सीटी, बिट्टी की साँसें, मोटर साइकिल की गुर्राहट" और बूढ़े पैन्थर के पीछे-पीछे पत्तों को रौंदते हुए उसके बिस्तर के आसपास खड़े हो जाते।

नींद फिर भी नहीं आती थी।

ऐसी ही एक जागती घड़ी में उसने फोन की घण्टी सुनी थी।

मिसेज पन्त के बरामदे से उसकी आवाज ऊपर बरसाती तक आ रही थी। एक चीखती, रिरियाती-सी आवाज। फिर वह बन्द हो गयी, बरामदे की बत्ती जली और कुछ देर बाद जीने पर पैरों की आहट सुनायी दी। मिसेज पन्त अपनी टार्च चारों ओर घुमा रही थीं, कुत्ते उनके आगे-पीछे दौड़ रहे थे।

यह पहला मौका था, जब वह ऊपर आयी थीं—एक बड़ी बूढ़ी औरत, पीला, झुर्रियों भरा चेहरा, सिर्फ एक लहँगा और ब्लाउज पहने, सिर के सफेद बाल हवा में उड़ते हुए; वह मकान-मालकिन नहीं, एक जादूगरनी-सी दिखायी दे रही थीं, आधी रात की घड़ी में अपनी लाठी खटखटाती हुई, वह बरसाती के खुले दरवाजे के आगे आ खड़ी हुई थीं।

"कहाँ है तुम्हारी कजिन ?" उन्होंने टार्च की रोशनी उसके चेहरे पर गड़ा दी।

"कैसा फोन ?"

"मुझे क्या मालूम, कैसा फोन···आधी रात को तुम्हें कौन बुलाता है, यह मैं जानूंगी ?"

टार्च की रोशनी मे बिट्टी का चेहरा, छत पर घूमते कुत्ते, देहरी पर खड़ी मिसेज पन्त—यह स्वप्न नही था। लेकिन सच भी नही था। वह दरवाजे से अलग, छत पर खड़ा था। बिट्टी भीतर गयी; चप्पल घसीटते हुए बाहर आयी, सीढ़ियां उतरने लगी; उसके पीछे मिसेज पन्त जा रही थीं, मिसेज पन्त के पीछे कुत्ते; कुछ देर में छत खाली हो गयी। वहां अब कोई नही था।

कोई नही था। सिर्फ वह था, जो अब 'मैं' हूं, बिट्टी को नीचे जाता देखता हुआ जीव; खाली छत के सन्नाटे मे खड़ा हुआ। दुर्घटना की भी एक आत्मा होती है, यह मैंने उस रात देखा था। देखा था, यह मैं ठीक कहता हूं, क्योंकि उसकी गन्ध आसपास की चीजों को भी पता चल जाती है और वे अपनी-अपनी जगह से उठकर तुम्हें घेर लेती हैं···और तुम उन्हें हक्की-बक्की निगाहों से ऐसे देखते हो जैसे उन्हें पहले कभी नही देखा, जैसे उन्हें पहली बार देख रहे हो—दुर्घटना की खबर बाद में पता चलती है, उसके गवाह पहले जुट जाते हैं, मैं आज भी उन्हें याद कर सकता हूं, क्योंकि वह रात, जब फोन आया था, अन्य रातो से अचानक अलग छिटक गयी है, उस रात की अपनी छत है, अपना आकाश, अपना सन्नाटा; ये सब गवाह हैं, जो मेरे साथ थे; मैं उन्हें याद कर सकता हूं, क्योंकि ऐन दुर्घटना के वक्त बाकी दुनिया बुझ जाती है, जैसे बाढ़ के पानी में सबकुछ डूब जाता है, पता भी नही चलता, यहां कोई रहता था, जीता था, कोई बस्ती थी, कोई घर ··सब नीचे गुम हो जाते हैं; गुम हो जाते हैं, दिखते नही, लेकिन रहते हैं, पानी के नीचे एक दूसरी जिन्दगी चलती है, जिसमे मैं भी था। मैं ऊपर भी था, नीचे भी। मैं पानी के नीचे दूसरी जमीन पर चलता हुआ अपने को पाताल के अंधेरे तल से ऊपर देख रहा था, जहां वह छत पर खड़ा था, वह लड़का, हवा में ठिठुरता हुआ, प्रतीक्षा करता हुआ···

ऊपर, छत पर, सेमल के पेड़ तले, मुंडेर से सटी वह खड़ी थी—निश्चल। "बिट्टी, किसका फोन था ? किसने तुम्हें बुलाया था ?"

वह मुड़ी नही, सिर्फ उसका हाथ पकड़ लिया, कसकर, एक कसी हुई ठण्डी पकड़, जो खून को बर्फ कर देती है, एक सफेद जमे हुए मौन पर गूंगी आंखें अंधेरे को लीलते हुए ऊपर उठती हैं, होंठ फड़फड़ाते हैं, किन्तु शब्द एक भी बाहर नही निकलता; उसके सिर के पीछे सेमल का पेड़ सिर हिलाता है, पीली

शाखाओं के बीच दो आँखें नीचे झाँकती हैं, गुलेल का काला रबड़ साँप-सा झूलता है, हवा में सिरसिराता हुआ, धीरे से फुसफुसाता हुआ···मैंने तुमसे क्या कहा था ?

पागल लड़की; देखती नहीं, वे खेल रहे हैं। वे बहुत ऊपर घास के टापू पर हैं; वे स्ट्रिनबर्ग का ड्रामा नहीं कर रहे, वे एक पिछली जिन्दगी दुहरा रहे हैं, झाड़ियों के पीछे, चाँदनी के घेरों में चलते हुए, सरसराते पत्तों के बीच, जहाँ उस शाम इरा ने अपने से बोलते हुए एक सत्य बाहर निकाला था, तुम्हारे चाकू की नोक से ज्यादा सच, ज्यादा तेज, ज्यादा असली, उसे कागज के एक टुकड़े पर लिखा था और तब एक चमत्कार हुआ था—

चमत्कार; मैंने उसे देखा था; निक्की भाई को उसे दिया था और निक्की भाई, जो बरसों से अपना रोल भूल गये थे, उन्हें उस पुरजे को पढ़कर अचानक अपना पार्ट याद हो आया था। उन्हें मालूम था, उन्हें क्या करना है। उन्होंने कुछ ऐसा किया, जो बिट्टी और उसके दोस्त कभी नहीं कर सके।

वह बाहर आ गये थे। वह टब के पानी में लेटे थे।

ऐसी ही एक रात मैं टैक्सी लूँगा। वह रात भी नहीं होगी, सुबह होने से पहले का अँधेरा, जब आकाश में तारों की जगह सिर्फ शीतला देवी के दाग टिमकते हैं। मैं बिट्टी के साथ सीढ़ियाँ उतरूँगा, मिसेज पन्त और उनके कुत्ते चुपचाप हमें बाहर निकलता हुआ देखेंगे; मैं उन्हीं सड़कों से गुजरूँगा, जिन पर बरसों पहले बिट्टी के साथ गुजरा था। निजामुद्दीन का पुलिस स्टेशन, पुराने मकबरों के खँडहर, डा० जाकिर हुसैन रोड की लम्बी, अन्तहीन सड़क, इण्डिया गेट, अँधेरे में सुलगती अज्ञात सैनिक की लौ···

वह टैक्सी में चुप बैठी थी, पत्थर-सी बेजान, चेहरा खिड़की के शीशे से चिपका था, न बाहर देख रही थी, न भीतर। उसने आखिर तक मुझे कुछ नहीं बताया। उसने सबकुछ मुझ पर छोड़ दिया था।

यह ठीक था। मैं अपनी आँखों से देख रहा था; हम टैक्सी से नीचे उतरे थे, प्लाजा के पीछे अँधेरी गली में। निक्की भाई के फ्लैट के आगे एक छोटी-सी भीड़ जमा थी। पता नहीं, आधी रात की इस घड़ी में वे कौन-से बिलों से निकलकर वहाँ आ गये थे। वे एक कोने में खड़े ऊपर देख रहे थे। किसी ने उन्हें नहीं रोका। सिर्फ सीढ़ियों पर किसी अजनबी आदमी ने उन्हें टोका था—

''देखकर चढ़िएगा। पानी बह रहा है।''

सीढ़ियों पर पानी, सुर्ख, गुलाबी रंग का मैला परनाला; धूल और मिट्टी से भरे चहबच्चों से बचते हुए वे ऊपर आये थे और तब उसे उस रात पहली बार झटका-सा लगा; नित्ती भाई के फ्लैट का दरवाजा किसी पब्लिक दफ्तर की तरह खुला था, कोई भी भीतर जा सकता था, हर कमरे की बत्ती जल रही थी; कमरे में पड़ी चीजें वही थी, जिन्हे उसने बहुत दिन पहले एक शाम देखा था, नित्ती भाई का ड्राइंग बोर्ड, खिड़की के पास खड़ा ऊँचा ईज़ल, किताबों की आलमारी—लेकिन अब वे नंगी, उघड़ी पड़ी थी और वे चोरों की तरह उनके बीच खड़े थे, खाली रोशनी में चमचमाता समूचा फ्लैट, न कोई आवाज, न शोर, सिर्फ एक बासी, सीली गन्ध हवा मे ठहरी थी, पानी मे भीगी दरियों और कालीनों मे ऊपर उठती हुई…

वह रात बार-बार लौट आती है। वह अमिट है। वह एक फ्रेम है, जिसके भीतर दिल्ली में बिताये तीन महीने एक तस्वीर की तरह जड़ गये हैं; मैं जब चाहूँ, उस फ्रेम को उठा सकता हूँ, हर कोने से उसे देख सकता हूँ, यहाँ समय ठहर गया है; यहाँ वे ठहर गये हैं, बिट्टी के दोस्त, यहाँ सब चलती सुइयाँ एक-दूसरे से बिंध गयी हैं, बिंधा हुआ बूढ़ा समय एक ठौर और ठिकाना पा गया है; चौराहे पर खड़े सिपाही ने दोनों हाथ उठाकर हम सबको रोक लिया है ताकि दुर्घटना की घड़ी को हूबहू दर्ज किया जा सके, पता चल सके, कौन गलत था, कौन ठीक। ''और तब मुझे लगा जैसे दुनिया में अगली जगह…सिर्फ दुर्घटना की जगह है, यहाँ सब बत्तियाँ जली रहती हैं; यहाँ पुराने फैसलों के पंख बिखरे रहते हैं, उस कबूतर की तरह, जिसे बिल्ली, नोच-नोंचकर फेंक देती है, पंख अलग, पंजे अलग, सिलाबी-सा खून जहाँ पर बहता है, बूँद-बूँद सीढ़ियों पर उतरता है, बाहर जाता है; कोई उसे रोकता नही।…

हल्की-सी आवाज हुई। घर के सन्नाटे में पहली आवाज; बिट्टी [illegible] खड़ी रही; पहले घर की चुप्पी असाधारण जान पड़ी थी, अब [illegible]। कुछ देर तक वे नित्ती भाई की चीजों को घूरते रहे; वे स्थिर [illegible]। [illegible] उसके पीछे कोई चल रहा था। अगर घर की कोई आत्मा होती, [illegible] तरह चलती, अदृश्य और सर्वव्यापी, सब चीजों से जुड़ी हुई, लेकिन [illegible] अकेली; मैं वहाँ से चला जाना चाहता था। पहली बार आँखें मूँदकर [illegible] चाहता था। लेकिन उस क्षण बाथरूम का दरवाजा खुला और [illegible]। उन्होने बिट्टी को देखा, फिर मुझे, वह आगे बढ़ आये। उनकी [illegible]

शाखाओं के बीच दो आँखें नीचे झाँकती हैं, गुलेल का काला रबड़ साँप-सा झूलता है, हवा में सिरसिराता हुआ, धीरे से फुसफुसाता हुआ···मैंने तुमसे क्या कहा था ?

पागल लड़की; देखती नहीं, वे खेल रहे हैं। वे बहुत ऊपर घास के टापू पर हैं; वे स्ट्रिनबर्ग का ड्रामा नहीं कर रहे, वे एक पिछली जिन्दगी दुहरा रहे हैं, झाड़ियों के पीछे, चाँदनी के घेरों में चलते हुए, सरसराते पत्तों के बीच, जहाँ उस शाम इरा ने अपने से बोलते हुए एक सत्य बाहर निकाला था, तुम्हारे चाकू की नोक से ज़्यादा सच, ज्यादा तेज़, ज्यादा असली, उसे कागज़ के एक टुकड़े पर लिखा था और तब एक चमत्कार हुआ था—

चमत्कार; मैंने उसे देखा था; नित्ती भाई को उसे दिया था और नित्ती भाई, जो बरसों से अपना रोल भूल गये थे, उन्हें उस पुरजे को पढ़कर अचानक अपना पार्ट याद हो आया था। उन्हें मालूम था, उन्हें क्या करना है। उन्होंने कुछ ऐसा किया, जो बिट्टी और उसके दोस्त कभी नहीं कर सके।

वह बाहर आ गये थे। वह टब के पानी में लेटे थे।

ऐसी ही एक रात मैं टैक्सी लूंगा। वह रात भी नहीं होगी, सुबह होने से पहले का अँधेरा, जब आकाश में तारों की जगह सिर्फ शीतला देवी के दाग टिमकते हैं। मैं बिट्टी के साथ सीढ़ियाँ उतरूँगा, मिसेज़ पन्त और उनके कुत्ते चुपचाप हमें बाहर निकलता हुआ देखेंगे; मैं उन्हीं सड़कों से गुजरूँगा, जिन पर बरसों पहले बिट्टी के साथ गुज़रा था। निजामुद्दीन का पुलिस स्टेशन, पुराने मकबरों के खँडहर, डा० ज़ाकिर हुसैन रोड की लम्बी, अन्तहीन सड़क, इण्डिया गेट, अँधेरे में सुलगती अज्ञात सैनिक की लौ···

वह टैक्सी में चुप बैठी थी, पत्थर-सी बेजान, चेहरा खिड़की के शीशे से चिपका था, न बाहर देख रही थी, न भीतर। उसने आखिर तक मुझे कुछ नहीं बताया। उसने सबकुछ मुझ पर छोड़ दिया था।

यह ठीक था। मैं अपनी आँखों से देख रहा था; हम टैक्सी से नीचे उतरे थे, प्लाज़ा के पीछे अँधेरी गली में। नित्ती भाई के फ्लैट के आगे एक छोटी-सी भीड़ जमा थी। पता नहीं, आधी रात की इस घड़ी में वे कौन-से बिलों से निकलकर वहाँ आ गये थे। वे एक कोने में खड़े ऊपर देख रहे थे। किसी ने उन्हें नहीं रोका। सिर्फ़ सीढ़ियों पर किसी अजनबी आदमी ने उन्हें टोका था—

"देखकर चढ़िएगा। पानी बह रहा है।"

सीढ़ियों पर पानी, सुर्ख, गुलाबी रंग का मैला परनाला; धूल और मिट्टी से भरे चहबच्चों से बचते हुए वे ऊपर आये थे और तब उसे उस रात पहली बार झटका-सा लगा, नित्ती भाई के फ्लैट का दरवाजा किसी पब्लिक दफ्तर की तरह खुला था, कोई भी भीतर जा सकता था, हर कमरे की बत्ती जल रही थी; कमरे में पड़ी चीजें वही थीं, जिन्हें उसने बहुत दिन पहले एक शाम देखा था, नित्ती भाई का ड्राइंग बोर्ड, खिड़की के पास खड़ा ऊँचा डेस्क, किताबों की आलमारी—लेकिन अब वे नंगी, उघड़ी पड़ी थीं और वे चोरों की तरह उनके बीच खड़े थे, खाली रोशनी में चमचमाता ममूचा फ्लैट, न कोई आवाज, न शोर, सिर्फ एक बासी, सीली गन्ध हवा में ठहरी थी, पानी में भीगी दरियों और कालीनों से ऊपर उठती हुई'''

वह रात बार-बार लौट आती है। वह अमिट है। वह एक फ्रेम है, जिसके भीतर दिल्ली में बिताये तीन महीने एक तस्वीर की तरह जड़ गये हैं, मैं जब चाहूँ, उस फ्रेम को उठा सकता हूँ, हर कोने से उसे देख सकता हूँ, वहाँ समय ठहर गया है; वहाँ वे ठहर गये हैं, बिट्टी के दोस्त; वहाँ सब चलती सुइयाँ एक-दूसरे से बिंध गयी हैं, बिंधा हुआ बूढ़ा समय एक ठौर और ठिकाना पा गया है, चौराहे पर खड़े सिपाही ने दोनों हाथ उठाकर हम सबको रोक लिया है ताकि दुर्घटना की घड़ी को हूबहू दर्ज किया जा सके, पता चल सके, कौन गलत था, कौन ठीक। '''और तब मुझे लगा जैसे दुनिया में असली जगह'''सिर्फ दुर्घटना की जगह है, वहाँ सब बत्तियाँ जली रहती हैं; वहाँ पुराने फैसलों के पंख बिखरे रहते हैं, उस कबूतर की तरह, जिसे बिल्ली, नोंच-नोचकर फेंक देती है, पंख अलग, पंजे अलग, बिनाबी-सा खून जहाँ पर बहता है, बूँद-बूँद सीढ़ियों पर उतरता है, बाहर जाता है; कोई उसे रोकता नहीं।'''

हल्की-सी आवाज हुई। घर के सन्नाटे में पहली आवाज; बिट्टी ठिठकी खड़ी रही; पहले घर की चुप्पी असाधारण जान पड़ी थी, अब यह आवाज। कुछ देर तक वे नित्ती भाई की चीजों को घूरते रहे; वे स्थिर थीं। लेकिन उनके पीछे कोई चल रहा था। अगर घर की कोई आत्मा होती, तो शायद इसी तरह चलती, अदृश्य और सर्वव्यापी, सब चीजों से जुड़ी हुई, लेकिन अपने में अकेली; मैं वहाँ से चला जाना चाहता था। पहली बार आँखें मूँदकर मुड़ जाना चाहता था। लेकिन उस समय बाथरूम का दरवाजा खुला और डैरी बाहर

उन्होंने बिट्टी को देखा, फिर मुझे, वह आगे बढ़ आयें। उनकी कमीज की

भूल रही थीं, पैर नंगे थे, पानी और कीचड़े में लिथड़े हुए, पैंट के पांयचे ऊपर मुड़े हुए थे···बिट्टी ने शायद यह कुछ नहीं देखा, उसने सिर्फ डैरी को देखा था; उनके बदहवास चेहरे को, और वह उनके पास चली आयी थी, उनकी बाँहों को हिला रही थी, उनकी आँखों को टटोल रही थी, जैसे वह अभी तक इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही हो; वह शायद उसे कुछ कहना चाहते थे, लेकिन बिट्टी ने अपना सिर उनके कन्धों में दबोच लिया था, बीच के दुखों, झगड़ों, आँसुओं के परे, जहाँ वे इस क्षण खड़े थे और उनके पास कहने को कुछ नहीं बचा था।

बिट्टी ने सिर उठाया, कुछ देर तक सूनी आँखों से डैरी को देखती रही।

"इरा को खबर दी थी ?"

"वह आती होगी।" डैरी ने सिर उठाया, तो सुबह का मैला उजाला उनके चेहरे पर सिमट आया। लगता था, वह रात भर नहीं सोये।

बिट्टी अब भी उनकी आँखों में कुछ ढूंढ़ रही थी।

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"चौकीदार ने फोन किया था।"

"चौकीदार ने ?"

"वह कल रात यहाँ आये थे। चौकीदार ने उनका कमरा साफ किया··· कहने लगे, कुछ दिन यहाँ रहेंगे। दिन भर काम करते रहे, रात को खाना भी मँगवाया था।"

"तुम्हें कब पता चला ?"

"दो घण्टे पहले, जब तुम्हें फोन किया था···चौकीदार ने देखा, पानी सीढ़ियों पर बह रहा है; उसने सोचा, शायद वह बाथरूम का नल बन्द करना भूल गये हैं, वह ऊपर गया। देर तक दरवाजा खटखटाता रहा, लेकिन भीतर से कोई आवाज़ सुनायी नहीं दी; उसे सिर्फ मेरा नम्बर मालूम था।"

"उन्हें खबर दे दी थी ?"

"किन्हें ?"

"उनकी पत्नी को।"

डैरी चुप रहे; फिर सँभलकर बिट्टी को देखा—

"अभी नहीं···उन्हें इस तरह देखना ठीक नहीं होगा।"

"वह···"

"हाँ, वह अभी वहाँ हैं।"

"तुमने उठाया नहीं ?"

"पुलिस के आने से पहले नहीं···उन्होंने कुछ भी करने से मना किया है।"

उस क्षण दोनों ने मुझे देखा; मैं बिट्टी के पीछे खड़ा था···हैरी कुछ देर असमंजस में खड़े रहे; नहीं, अब वे मुझे अलग नहीं रख सकते थे। मैं उनके साथ था; मैं आखिर तक उनके साथ चिपटता गया।

बाथरूम का खुला दरवाजा और वहाँ निक्की भाई की जानी-पहचानी चीजें दिखायी दीं··· मैं वहाँ एक शाम आया था; उस दिन वहाँ इरा के कपड़े रखे थे, उसके क्लिप, सिगरेट की डिब्बी, सूखते हुए अण्डरवियर, कोने में साड़ियों का ढेर; अब वहाँ कुछ नहीं था, अब वहाँ सिर्फ टब में भरा पानी था, जो टब के बाहर बहता हुआ फर्श पर जमा हो गया था।

वह टब में लेटे थे। वह खुली आँखों से हमें निहार रहे थे, एक हल्का-सा विस्मय उनमें था, मानो उन्हें किसी बात पर घोर, अनिर्वचनीय आश्चर्य हो और वह उसे हमें बताना चाहते हों; उनका एक हाथ पानी में था, दूसरा टब के किनारे पर, जहाँ शेव करने का ब्लेड रखा था, साफ, चमकता हुआ, जिसकी धार पर खून का एक धब्बा जमा रह गया था; उन्होंने बहुत सफाई से सब काम किया था, कहीं कोई गन्दगी नहीं, हड़बड़ाहट नहीं। अगर वह नल बन्द करना न भूलते तो शायद किसी को पता भी नहीं चलता, भ्रम होता, जैसे वह नहा रहे हों, अगर उनकी आँखें इस तरह अपलक न खुली होतीं, पाँव और घुटने पेट की तरफ न सिकुड़े होते; पानी के नीचे वह उस तस्वीर की तरह दिखायी देते थे जिसमें बच्चे अपनी माँ के गर्भ में लेटे रहते हैं हाथ की मुट्ठियाँ बन्द, बाल सिर पर गुँथे हुए, टाँगें ऊपर की ओर सिकुड़ी हुईं, पेट और छाती एक सफेद लोथ में लिपटे हुए; वह मुकम्मिल जान पड़ रहे थे, सम्पूर्ण और साफ, जैसे पानी में बहते हुए खून से उनका कोई रिश्ता न हो, सब रिश्तों से मुक्त, भीगी आँखों से हमें निहारते हुए, एकटक।

मैं बाहर निकल आया। उसके बाद बिट्टी के चेहरे को देखना असहनीय जान पड़ा, किसी भी जीते हुए मनुष्य के चेहरे को देखना असम्भव था। मैं उनका अन्तिम गवाह था, जब वह अपने कमरे में बैठे थे···क्या उस क्षण उन्होंने फैसला लिया था ? नहीं, मैं अकेला नहीं था, मेज पर गिरती दुपहर की मलिन धूप, दालान में खड़ी तीन पहियों की साइकिल, मशकवाले की डूबी आँखें, मेज पर रखी इरा की चिट्ठी, दरवाजे की ओट में खड़ी छाया, सब उनके गवाह थे। सब वहाँ मौजूद थे। वे जानते थे। वे एक तरफ थे, निक्की भाई दूसरी तरफ। वह बिना किसी से कुछ कहे-सुने दूसरी तरफ चले गये थे।

मैं कमरे में चला आया। दीवार के सहारे वह सोफ़ा था, पुरानी किताबों के ढेर, डिज़ाइन के बड़े ड्राइंग-पेपर, पेन्सिलें, और स्याही की बोतलें···मुझे याद आया, वह आर्किटेक्ट थे; घर बनाते थे। यह उनका घर था, उनके कमरे की खिड़की, जहाँ से कनाटप्लेस की ऊँची इमारतें दिखायी देती थीं। बारह-खम्बे के पेड़ सुबह की पीली रोशनी में निकल रहे थे; हवा में धीरे-धीरे हिलते हुए; मुझे लगा, गर्मियाँ आ रही हैं; फिर याद आया, वह इन गर्मियों में 'सी गल' करना चाहते थे, डैरी के टैरेस पर।

पता नहीं, उस क्षण वह कहाँ थे ?

वह दिन; और आज का दिन । [illegible] नहीं । सबकुछ धीरे-धीरे पहले जैसा हो गया । [illegible] पीला पड़ने लगा और अब काफी बात की [illegible] संख्या दुगुनी हो गयी है । [illegible] चमकते थे । धूल की परत [illegible]

धूल दिन में भी उड़ती; [illegible] साधू-सा खड़ा रहता, [illegible] जिन्दगी हिलती—लेकिन अब [illegible]

वह भीतर चला आता था । [illegible] शहर पर एक [illegible]

[illegible]

[illegible]

भूका हुआ। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। सुबह हो गयी थी और बिट्टी तैयार बैठी थी। उसका दिल डूबने लगा, उसने सोचा था, प्रीमियर के दिन वह सुबह जल्दी उठेगा, बिट्टी के लिए चाय बनायेगा, फिर उसे उठायेगा; सब-कुछ वैसा करेगा, जैसे वह उन दिनों करता था, जब वह इलाहाबाद से आया था। लेकिन अब कोई फायदा नहीं था। बिट्टी अपना बैग लेकर तैयार बैठी थी। उजली और साफ—लेकिन रक्तहीन। नित्ती भाई की मृत्यु के बाद उसका चेहरा बराबर एक ठिठुरती हुई ठण्ड में जमा रहता। न कोई भाव, न भावहीन—सिर्फ सख्त, सख्ती, जो सूख जाती है, सूखकर एक चमक-सी बन जाती है।

बिट्टी उसके घेरे में थी। पहले उसे देखकर लगता था, वह यहाँ है, लेकिन कहीं और भी; अब 'कहीं और' उसके भीतर था, जैसे वह चारों तरफ भटककर दुबारा अपनी देह में लौट आयी हो; वह देह अपने में चमक थी। निष्फल, तटस्थ, अपने को अपने से जोड़ती हुई···

वह जाने को खड़ी थी। हाथ में एक बैग, पुरानी सलेटी पैंट, कुर्ते का खुला हुआ कॉलर, जिस पर पसीने की एक झांई गले पर सिमट आयी थी। वह कमरे की देहरी पर खड़ी थी—तल्लीन और शान्त—जैसे बरसों पहले इलाहाबाद के स्टेशन पर उसे देखा था। वह आखिरी दिन का दृश्य आज भी बार-बार लौट आता है—यदि मैं उसे 'दृश्य' कह सकूं—रसोई का खुला दरवाजा, बाहर छत पर बिखरा वासन्ती आलोक, मेरी बँधी हुई पोटलियाँ, सूटकेस। सूट्टों के पार्टीशन के पीछे छिपे हुए मेरे दिल्ली के दिन, रातें, खाली दुपहरों को महीन धागे से सीते हुए डैरी के रिकॉर्ड; दीवार पर टँगी, सबकुछ मूक भाव से निहारती मदर टैरेसा की आँखें।

नीग्री लड़की की आवाज़।

मकबरे पर लेटी छिपकली की मूर्छित नींद।

मिसेज पन्त के ट्रांजिस्टर पर रात का संगीत, कुत्ते, धूल की आँधी। बिट्टी के दोस्तों की हँसी, चाँदनी में चमकते बियर के गिलास; सीढ़ियों पर धीरे-धीरे उतरते डैरी, मुंडेर के नीचे झांकती बिट्टी की आँखें।

कुमाऊ जंगलों में छप-छप करती पैन्थर की पदचाप।

यह सब उस सुबह के एक क्षण में सिमट गया था, जब बिट्टी दरवाजे की देहरी पर जाने को तैयार खड़ी थी···

उसे मालूम था, मुझे मालूम है; मैं इस दिन, इस घड़ी, इस सुबह की अर्से से प्रतीक्षा कर रहा था।

यह छुटकारे की घड़ी थी । वह दरवाज़े से लौट आयी । उसके [illegible] बैठ गयी ।

"तुम्हें मालूम है ?"

"हाँ !" उसने सिर हिलाया ।

"तुम्हारा पास नेफीराम के पास है…" वह [illegible] थी, "[illegible] से नहीं देखना होगा ।"

वह चुप छत की ओर ताकता रहा ।

वह उठ खड़ी हुई, पंखा [illegible] "[illegible]" [illegible] ।"

"बिट्टी, मुझे तुमसे कुछ कहना है ।"

वह रुक गयी । दरवाज़े पर खड़े-खड़े [illegible] आयी, "क्या बात है ?"

"मैंने नित्ती भाई को एक चिट्ठी दी थी… [illegible] ।"

"मुझे मालूम है ।" उसने [illegible] । "[illegible] हो ? उसे जाना ही था ।"

"क्या चिट्ठी में यही लिखा था ?"

"मुझे नहीं मालूम, मुन्नू ! [illegible] ।"

"क्या वह हिन्दुस्तान छोड़ [illegible] ?"

"वहाँ उसके माँ-बाप हैं ।" उसने कहा ।

"फिर ?"

"फिर क्या ?"

कुछ नहीं; [illegible] था ।

[illegible]

बीच में कितना समय गुज़र गया । अब वह लड़का नहीं रहा । वह एक-एक साल पार करता हुआ उस दुपहर तक आ गया, जहाँ एक लम्बी लाइन लगी थी । वह भी उसमें शामिल हो गया । उसकी मुट्ठी में रुपये थे, जो बाबू ने इलाहाबाद से भिजवाये थे । वह दिन और आज का दिन···वही धूप, वही भीड़, वही सीढ़ियों पर बहता पानी । वह अपने को उससे बचाता हुआ लाइन में आ खड़ा हुआ, धीरे-धीरे सरकता हुआ बुकिंग-आफिस की खिड़की के सामने खड़ा हो गया । वे सब जानते थे । वे सब के सब गवाह थे । दर्शक, देखनेवाले; वे लोग, जो आडिटोरियम में बैठते हैं, टिकट उनकी जेब में होता है; वे कभी भी उठकर बाहर जा सकते थे, जैसे वह । वह उनमें था । वह बाहर चला आया था । यह उसकी आखिरी शाम थी । वह टिकट जेब में रखकर चारों तरफ घूम रहा था । वह कभी-कभी किसी चौराहे पर ठिठक जाता; उन तोतों को देखने लगता जो मिण्टो रोड के पुल से उड़ते हुए पुराने शहर की तरफ जाते थे । वह स्टेट्समैन के मोड़ पर चला आया । वहाँ लोगों की भीड़ थी, किन्तु उसे सारा शहर खाली दिखायी दे रहा था ।

लोग अब भी दिखते हैं, ट्रैफिक-लाइट जलती है, दुकानों पर साइन बोर्ड चमकते हैं, पर दिखायी कुछ नहीं देता । सब आवाज़ें दब जाती हैं । धूल उड़ती है; अप्रैल की धूप एक रक्तहीन निचुड़ी हुई सफेदी-सी फैल जाती है जैसे वह कोई रेगिस्तान हो, हज़ार साल पहले की रोशनी, जहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता, न स्ट्रिनवर्ग, न स्टूडियो, न डैरी का बँगला; और तब चलते हुए उसने जेब से टिकट निकाला, दिल्ली-इलाहाबाद, मानो वह अपने को विश्वास दिला रहा हो कि अब वह उस शहर को दुबारा नहीं देखेगा, उस सड़क पर फिर कभी नहीं चलेगा जहाँ एक रात जनवरी के अँधेरे में बिट्टी भाग रही थी, उस रोड-साइन पर अपना सिर टिकाकर रो रही थी, जिसका नाम टालस्टाय मार्ग था; क्या वह सड़क सचमुच कहीं जाती थी जहाँ एक दिन डैरी गये थे—और लौट आये थे ?

नहीं, सच, कहीं जाने के लिए टिकट का होना जरूरी है; वह एक तरह का सिग्नल है जैसे घड़ी का होना, डायरी का होना, कैलेण्डर का होना—वरना एक रात हमेशा के लिए एक रात रहेगी, एक शहर हमेशा के लिए एक शहर, एक मृत्यु हमेशा के लिए एक मृत्यु, उसके जाने के बाद भी बारहखम्बा रोड की सड़क चलती रहेगी, मण्डी हाउस के आगे वह पेड़ खड़ा रहेगा जिसे पकड़कर एक रात अँधेरे में नित्ती भाई खड़े रहे थे; सप्रू हाउस की झाड़ियाँ, सिगरेट की दुकान,

में लहराते पेड़ ज्यों के त्यों खड़े रहेंगे और [illegible] इस रास्ते से गुज़रेगा, उसे पता भी नहीं चलेगा कि यहाँ बहुत पहले एक लड़की एक दूसरे लड़के के साथ जाती थी और वह लड़का [illegible] और वह लड़की रोड-साइन के तख्ते पर सिर रखकर रोती थी—

क्या यह एक तरह की मृत्यु है ?

वह अब चल नहीं रहा था। वह ठहरा हुआ न था; वह पानी के नीचे था, जब ऊपर सबकुछ बहता जान पड़ता है और वह उस पानी को रोक नहीं सकता था। वह उसके सिर के ऊपर से गुज़र जाता था, और वह उसे [illegible] चीन्ह नहीं सकता था, देखो, यह मैं हूँ, मैं यहाँ हूँ; वह कुछ [illegible] उसके ऊपर बहता रहेगा; किन्तु उसे रोका जा सकता है, यह वह जानता था। यह उसने देखा था, असल में असली देखना वही था, बिट्टी और डैरी की किताबों में, उस रिकार्ड में, जिसमें नीग्रो लड़की रुकी-रुकी आवाज़ में गाती थी, उस बच्ची के चाकू पर, जिसकी नोक पर एक दूसरे [illegible] थे, वहाँ समय और मृत्यु को रोक दिया गया था, देखा जा सकता था, जब एक दुपहर क्यूबिकल के सुराख से उसने बिट्टी को देखा था, और वह सबकुछ खोकर उस बिन्दु की तरफ जा रही थी, जहाँ रोशनी का भ्रम था; स्टेज की दूसरी तरफ, पता नहीं वहाँ कौन था, बौने की नंगी ठिठुरन या मदर टेरेसा की गमगीन-सी मुस्कराहट या वे दो लड़के और एक बच्ची जो सर्दी की उस रात ढाबे की भट्ठी से उसकी ओर निहार रहे थे ?

वह बीच रास्ते में ठिठक गया। कहीं दूर से बहुत धीरे-धीरे साढ़े छै बजे का गजर सुनायी दिया। अँधेरा हो चला था, लेकिन पेड़ों की फुनगियाँ आखिरी रोशनी में सुलग रही थीं और तब पता नहीं कैसे, क्यों, निर्मल, उसने आँखें मूँद लीं। वह बिट्टी और डैरी और इंदु के लिए प्रार्थना करने लगा, वह [illegible] वर्गों के लिए भी प्रार्थना करने लगा जो पागलखाने में मरे थे और जिनकी [illegible] के लिए भी जो टब में खून के चहबच्चे में लेटे थे और उन बच्चों के लिए जो अकेली बाग में भटकती थी···और अपने लिए···

पता नहीं, वह अपने लिए क्या माँग रहा था ? [illegible]

सहसा उसके फड़फड़ाते होंठ रुक गये। [illegible] शहर पर गिर रही थी। [illegible] उसने सोचा, [illegible] हुआ होगा। परदा उठा होगा। बिट्टी स्टेज पर खड़ी होगी। उसको [illegible] देखा होगा—और वह [illegible] खड़ी होगी।